अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

फ़रवरी 2023

जिज्ञासुओं के लिए
आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक

विषय-सूची
जिज्ञासुओं के लिए आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक

सन्देश	३
अस्तित्व का एकमात्र कारण	४
आध्यात्मिकता क्या है	७
जिज्ञासुओं के लिए आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक	११
दैनन्दिन जीवन में आध्यात्मिकता का अभ्यास	२७

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३९
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : नींद और स्वप्न	नवजातजी	४२
मैं तुम्हें द्वारिका तक गया देखने (कविता)	उमेश कुलश्रेष्ठ 'दीप'	४५
प्रकृति-माँ का सान्निध्य	रामनाथ 'सुमन'	४६
माँ को तुम पर गर्व है...	वन्दना	४७

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

एक और वर्ष बीत गया और अपने पीछे पाठों का बोझा छोड़ता गया जिनमें कुछ कठोर हैं और कुछ पीड़ाजनक भी।

अब एक नया वर्ष शुरू हो रहा है और अपने साथ प्रगति और उपलब्धियों की सम्भावनाएँ ला रहा है। लेकिन इन सम्भावनाओं का पूरा लाभ उठाने के लिए हमें पिछले पाठों को समझना चाहिये।

यह जानना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि सभी दुर्घटनाएँ अचेतना का परिणाम होती हैं। फिर भी, बाहरी रूप से, उनके मुख्य कारणों में से एक है अनुशासनहीनता का भाव, अनुशासन के लिए एक प्रकार का तिरस्कार।

यह हमारे ऊपर छोड़ा गया है कि हम एक सतत और अनुशासनयुक्त प्रयास के द्वारा यह प्रमाणित करें कि हम अधिक सचेतन और अधिक सत्य जीवन की अपनी अभीप्सा में सच्चे और निष्कपट हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, १२३

इस अंक में श्रीमाँ की पुस्तक 'प्रार्थना और ध्यान' की कुछ प्रार्थनाओं का समावेश है। जब यह छपाई के लिए गयी तो श्रीमाँ ने निम्नलिखित टिप्पणी जोड़ी थी :

"यह पुस्तक तीव्र यौगिक तपस्या के वर्षों में लिखी गयी दैनन्दिनी के उद्धरणों से एकत्र की गयी है। यह मुख्यतया तीन प्रकार के साधकों का पथ-प्रदर्शन कर सकती है : जिन्होंने आत्म-संयम को अपनाया है, जो भगवान् की ओर ले जाने वाले मार्ग की खोज में हैं और जो भागवत कार्य के लिए अपने-आपको अधिकाधिक समर्पित करना चाहते हैं।"

अस्तित्व का एकमात्र कारण

महत्त्व बस एक ही चीज़ का होना चाहिये, वह है भगवान्, 'उनकी' इच्छा, 'उनकी' अभिव्यक्ति, 'उनकी' अभिव्यञ्जना। हम यहाँ पर उसी के लिए हैं, हम वही हैं, और कुछ भी नहीं। और जब तक स्व की, अहं की, व्यष्टि की भावना तुम्हारे अन्दर आती रहे तो, यह इस बात का प्रमाण है कि तुम अभी तक वह नहीं हो जो तुम्हें होना चाहिये, बस। मैं यह नहीं कहती कि यह रातोरात हो सकता है, लेकिन वस्तुतः सत्य यही है।

ऐसा है क्योंकि इस क्षेत्र में, आध्यात्मिक क्षेत्र में भी, बहुत अधिक लोग ऐसे होते हैं (मैं कह सकती हूँ कि बहुसंख्यक लोग हैं जो आध्यात्मिक जीवन को अपनाते और योग करते हैं), इनमें से बहुत अधिक लोग इसे निजी कारणों से अपनाते हैं, सब तरह के व्यक्तिगत कारणों से अपनाते हैं : कुछ इसलिए कि वे जीवन से उकता गये हैं, कुछ इसलिए कि वे दुःखी हैं, कुछ ऐसे भी हैं जो ज़्यादा जानना चाहते हैं, कुछ इसलिए कि वे आध्यात्मिक दृष्टि से महान् बनना चाहते हैं, कुछ इसलिए कि वे ऐसी चीज़ें सीखना चाहते हैं जिन्हें वे दूसरों को सिखा सकें; वस्तुतः योग-साधना करने के लिए हज़ारों व्यक्तिगत कारण होते हैं। लेकिन अपनी सारी पवित्रता और निरन्तरता में यह सरल-सा तथ्य कि तुम अपने-आपको भगवान् को दे दो ताकि भगवान् तुम्हें अपनी इच्छा के अनुसार गढ़ सकें, हाँ तो, इसके करने वाले बहुत नहीं हैं, पर फिर भी वास्तविक सत्य यही है...

पर इस प्रकार की अनुभूति कि तुम्हारे जीवन का बस एकमात्र कारण, एकमात्र लक्ष्य, एकमात्र अभिप्राय है भगवान् के प्रति पूरा-पूरा, सम्पूर्ण, समग्र, इस हद तक समर्पण कि तुम अपने-आपको उनसे अलग न जान सको, पूरी तरह से, सम्पूर्ण भाव से, समग्र रूप से, सर्वभावेन, किसी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के हस्तक्षेप के बिना, वही बन जाओ—यह आदर्श मनोभाव है; और इसके अतिरिक्त, यही एक चीज़ है जो तुम्हारे लिए जीवन और कार्य में आगे बढ़ना सम्भव बनाती है। तब तुम हर चीज़ से सुरक्षित होगे और अपने-आपसे सुरक्षित होगे—यह "अपने-आप" ही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा संकट है—अपने-आपसे बढ़ कर और कोई संकट नहीं है (यहाँ "अपने-आप" से मेरा मतलब अहंकारमय स्व से है)।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, २१०-११

सोचने, देखने, अनुभव करने और जीने की हमारी सतही, सँकरी और कटी-छँटी मानव-शैली का गभीर और विशाल आध्यात्मिक चेतना में और एक सम्पूर्ण आन्तरिक तथा बाह्य अस्तित्व में रूपान्तर और साथ ही हमारे सामान्य मानव जीवन का दिव्य जीवन-प्रणाली में रूपान्तर ही हमारा केन्द्रीय लक्ष्य होना चाहिये। इस परम लक्ष्य का साधन है—अपनी समस्त प्रकृति को भगवान् को सौंप देना। अपने अन्दर की प्रत्येक वस्तु को अन्तरस्थ प्रभु, वैश्व 'सर्व' और परात्पर परम को समर्पित कर देना चाहिये। अपने संकल्प, अपने हृदय और अपने विचार को उस एक और बहुरूप भगवान् पर पूरी तरह से एकाग्र कर देना और अपनी सम्पूर्ण सत्ता को निःशेष रूप से प्रभु पर न्योछावर कर देना इस योग की एक निर्णायक गति है, यह अहं का उस 'तत्' की ओर मुड़ना है जो उससे अनन्तगुना महान् है, यही उसका आत्म-दान और अनिवार्य समर्पण है।

CWSA खण्ड २३, पृ. ८९

यदि हमारे अन्दर ऐसा विश्वास तथा साहस नहीं है कि हम अपने-आपको सभी वस्तुओं के 'प्रभु' तथा सभी प्राणियों के 'सखा' के हाथों में सौंप दें और अपनी मानसिक सीमाओं तथा मर्यादाओं का पूरी तरह से त्याग कर दें तो शाश्वत तथा अनन्त के आध्यात्मिक सत्य में पूरी तरह से प्रवेश करना हमारे लिए सम्भव नहीं हो सकता। एक-न-एक समय हमें निःशेष भाव से, संकोच, भय या संशय के बिना, मुक्त, अनन्त तथा पूर्ण ब्रह्म के महासागर में डुबकी लगानी ही होगी।

CWSA खण्ड २३, पृ. २०८ **श्रीअरविन्द**

हम जिन भगवान् को खोजते हैं वे सुदूर और अगम्य नहीं हैं। वे अपनी सृष्टि के हृदय में हैं और चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें, और अपने निजी रूपान्तर द्वारा उन्हें जानने के योग्य बनें, उनके साथ एक होने और अन्त में, सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करने-योग्य बनें। हमें अपने-आपको इसके लिए अर्पित करना चाहिये, हमारे जीवन का यही सच्चा प्रयोजन है। और इस उच्चतर उपलब्धि के लिए हमारा पहला क़दम है, अतिमानसिक 'चेतना' की अभिव्यक्ति। *'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३७७*

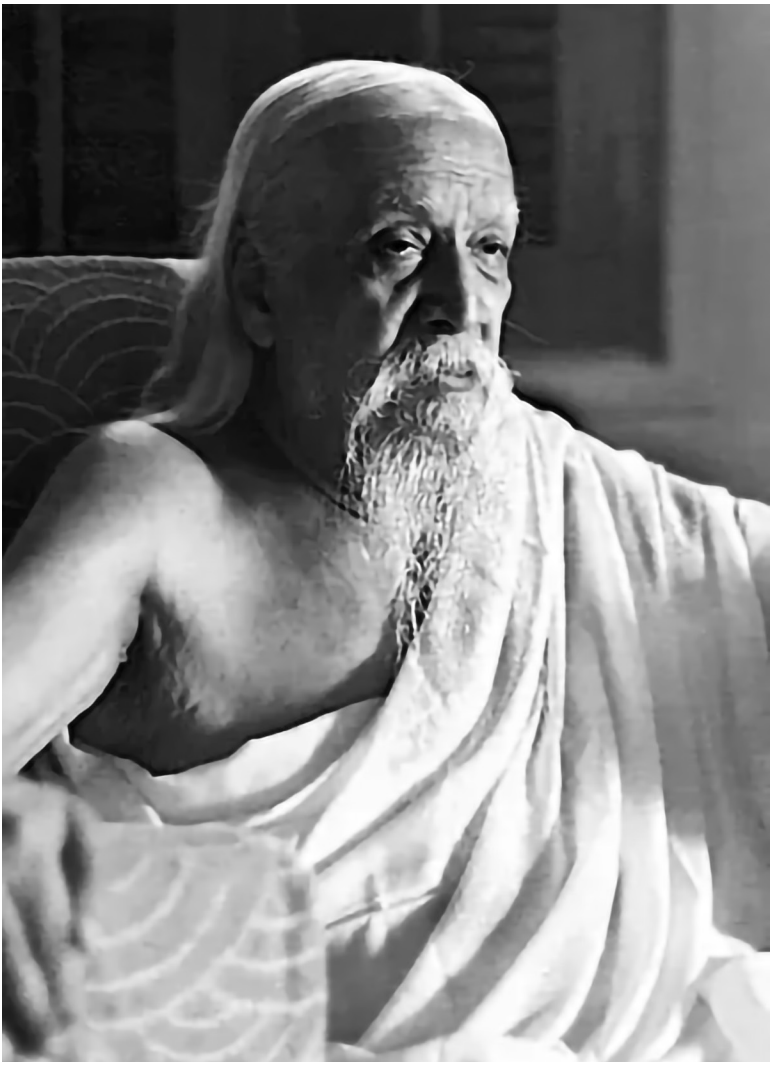

एक दिन वे हमारे जीवन को नये सिरे से गढ़ देंगे
और शान्ति का जादुई सूत्र हमारे कानों में फुसफुसायेंगे
औ' थमा देंगे हमारे हाथों में पार्थिव पूर्णता की कुञ्जी।

श्रीअरविन्द

आध्यात्मिकता क्या है

साधारण जीवन
औसत मानव-चेतना का जीवन है
जो अपनी वास्तविक सत्ता तथा भगवान् से अलग होकर
मन, प्राण तथा शरीर के सामान्य अभ्यासों या आदतों से निर्देशित होता है।
ये अभ्यास या आदतें अज्ञान के विधान हैं।...

इसके विपरीत, आध्यात्मिक जीवन
चेतना के परिवर्तन द्वारा सीधे आगे बढ़ता है,
वास्तविक सत्ता तथा भगवान् से पृथक् अज्ञानजनित साधारण चेतना से उस महत्तर चेतना की ओर बढ़ता है
जिसमें सर्वप्रथम व्यक्ति अपनी वास्तविक सत्ता के साथ सीधे जीवन्त सम्पर्क में आता है
और फिर भगवान् के साथ एकत्व स्थापित करता है।

आध्यात्मिक साधक के लिए
चेतना का यह परिवर्तन ही सब कुछ है जिसकी उसे तलाश है।
दूसरी हर चीज़ उसके लिए निरर्थक है।
CWSA खण्ड, २८, पृ. ४१९

जब तुम अहं के अतिरिक्त एक दूसरी चेतना से अवगत होते हो तो यह आध्यात्मिकता है,
और उसके प्रभाव के अन्दर अधिक-से-अधिक जीना शुरू कर देते हो।
और वह चेतना है—
विस्तृत, असीम, स्वयम्भू, अहं से शुद्ध इत्यादि।
जिसे आत्मा (स्व, ब्रह्म, दिव्य-प्रभु)... कहा जाता है।
SABCL खण्ड २३, पृ. ८७७

उच्च बौद्धिकता को आध्यात्मिकता नहीं कहते।

यह न आदर्शवाद है, न नैतिक आचरण की ओर मानसिक प्रवृत्ति या नैतिक शुद्धता तथा अतिसंयम; यह धर्मपरायणता अथवा धर्म के प्रति उत्कट व उदात्त भावुकता भी नहीं है और न ही इन सभी उत्कृष्ट वस्तुओं के मिश्रण को आध्यात्मिकता कह सकते हैं।

एक मानसिक विश्वास, धर्ममत अथवा श्रद्धा, भावुकतापूर्ण अभीप्सा, धार्मिक अथवा नैतिक सूत्र के अनुसार नियमित आचरण—इन सबको भी आध्यात्मिक उपलब्धि तथा अनुभूति नहीं कहते।

ये सब चीज़ें निस्सन्देह मन तथा प्राण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आध्यात्मिक विकास में भी प्रकृति को अनुशासित करने, उसे शुद्ध करने अथवा उसे एक उपयुक्त रूप प्रदान करने के लिए प्रारम्भिक तैयारी के रूप में इनका बहुत महत्त्व है।

किन्तु, फिर भी, ये सब मानसिक विकास से सम्बन्धित हैं। अभी तक आध्यात्मिक सिद्धि, अनुभूति, चेतना का परिवर्तन वहाँ नहीं है।

अपने सारतत्त्व में आध्यात्मिकता हमारी सत्ता के आन्तरिक सत्य के प्रति जागरण है, अपने वास्तविक स्वरूप, आत्मा के प्रति जागरण है जो हमारे मन, प्राण तथा शरीर से भिन्न है। आध्यात्मिकता है उसे जानने, अनुभव करने तथा वही बन जाने की आन्तरिक अभीप्सा।

आध्यात्मिकता है, उस महान् 'वास्तविकता' के साथ सम्पर्क में प्रवेश करना, घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना और एकत्व प्राप्त करना; वह आध्यात्मिकता विश्व से परे होते हुए भी विश्व में व्याप्त है और जो हमारी अपनी सत्ता में भी निवास करती है।

आध्यात्मिकता है, उस अभीप्सा, सम्पर्क तथा ऐक्य के परिणामस्वरूप हमारी सम्पूर्ण सत्ता का बदलाव, रूपान्तरण, एक नयी अभिव्यक्ति या नयी सत्ता में, एक नये स्वरूप में, एक नयी प्रकृति में एक नया संवर्धन, एक नव-जागरण।

CWSA खण्ड २१, पृ. ८७९-८०

आध्यात्मिकता का अर्थ है...

मन और जीवन से जो महानतर है उसका ज्ञान और हमारी अपनी सामान्य मानसिक और प्राणिक प्रकृति से परे एक पवित्र, महान्, दिव्य चेतना के लिए अभीप्सा, हमारे निम्न अंगों की क्षुद्रता और बन्धन में से मनुष्य के अन्दर की छिपी हुई आत्मा का एक महानतर वस्तु की ओर उमड़ना और ऊपर उठना।

CWSA खण्ड २०, पृ. १२१

आध्यात्मिकता का अर्थ है—

मनुष्य का नूतन तथा महानतर आन्तरिक जीवन, जिसकी नींव उसके सच्चे, उसके अन्तरतम, उच्चतम तथा विशालतम स्व तथा आत्मा की चेतना में प्रतिष्ठित हो, जिसके द्वारा वह सम्पूर्ण अस्तित्व को ऐसे ग्रहण करता है मानों उसमें उसकी आत्मा एक सतत वर्धनशील अभिव्यक्ति में प्रकट हो रही है और स्वयं अपने जीवन को एक ऐसा क्षेत्र पाता है जिसमें ऐसा रूपान्तर सम्भव होगा कि उसमें उसे अपना दिव्य चिन्तन प्राप्त होगा, तब उसकी सामर्थ्य बहुत अधिक विकसित हो जायेगी, और उसके अन्दर जो अपूर्ण आकार तथा रूप हैं वे दिव्य पूर्णता की छवि बन जायेंगे, और तब उसका प्रयास केवल यह नहीं होगा कि वह न केवल अपनी सत्ता की सम्भावनाओं को देखे भर, बल्कि साथ-साथ उन्हें जिये भी।

CWSA खण्ड २६, पृ. २७०

दिव्य पूर्णता हमेशा हमारे ऊपर उपस्थित रहती है;
मनुष्य के लिए चेतना तथा क्रिया में दिव्य बनना
तथा आन्तरिक तथा बाह्य रूप से दिव्य जीवन बिताना ही
आध्यात्मिकता का अर्थ है;
आध्यात्मिकता शब्द को इससे कम अर्थ देना
सचमुच अपर्याप्त अनुमान लगाना तथा ढोंगबाज़ी है।

CWSA खण्ड २५, पृ. २६२-६३

क्योंकि तू उसमें अन्तर्वासी है, मानव आशा करता, साहसी बनता है;
क्योंकि तू अभिव्यक्त है, मानव की आत्माएँ स्वर्ग की ओर चढ़ सकती हैं...

'सावित्री', पृ. ५१३-१४

जिज्ञासुओं के लिए आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक

३ दिसम्बर १९१२

पिछली रात मुझे तेरे पथ-प्रदर्शन के प्रति विश्वासपूर्ण समर्पण की प्रभावशीलता का अनुभव हुआ। जब यह ज़रूरी हो कि कोई चीज़ जानी जाये तो हम उसे जान लेते हैं और मन तेरे प्रकाश के प्रति जितना अधिक निश्चेष्ट हो, अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक स्पष्ट और अधिक पर्याप्त होती है।

कल तू जो कुछ मेरे अन्दर बोला था, उसे मैंने सुना, मैंने चाहा कि तूने जो कुछ कहा मैं उस सारे को लिख लूँ ताकि तेरा दिया हुआ सूत्र अपनी यथार्थता में गुम न हो जाये—क्योंकि अब मैं उस समय जो कहा गया था उसे दोहरा न सकूँगी। फिर मैंने सोचा कि सुरक्षित रखने का यह विचार तेरे प्रति विश्वास का अपमानजनक अभाव है, क्योंकि तू मुझे वह सब बना सकता है जो कुछ होने की मुझे ज़रूरत है; और उतनी मात्रा में जितनी में मेरा मनोभाव तुझे मेरे ऊपर और मेरे अन्दर काम करने दे, तेरी सर्वशक्तिमत्ता की कोई सीमा नहीं। यह जानना कि हर क्षण जो होना चाहिये वह निश्चित रूप से, यथासम्भव पूर्णता के साथ उन सबके लिए होता है जो तुझे हर चीज़ में और हर जगह देखना जानते हैं!

अब और कोई भय नहीं, और कोई परेशानी नहीं, और कोई तीव्र व्यथा नहीं; पूर्ण प्रसन्नता के सिवा कुछ नहीं, एक पूर्ण विश्वास, एक परम निष्कम्प शान्ति।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १३

५ दिसम्बर १९१२

'शान्ति' और 'नीरवता' में 'शाश्वत' प्रकट होते हैं, किसी चीज़ से तुम अपने-आपको क्षुब्ध न होने दो तो 'शाश्वत' अभिव्यक्त होंगे। सभी चीज़ों का सामना करते हुए पूर्ण समता रखो तो 'शाश्वत' वहाँ उपस्थित होंगे... हाँ, हमें बहुत अधिक तीव्रता न रखनी चाहिये, तुझे खोजने का बहुत अधिक प्रयास न करना चाहिये; प्रयास और तीव्रता तेरे सामने परदा बन जाते हैं। हमें तुझे देखने की इच्छा न करनी चाहिये क्योंकि वह एक मानसिक हलचल है जो तेरी 'शाश्वत उपस्थिति' को धुँधला बना देती है; सम्पूर्ण शान्ति, निरभ्रता और समता में सब कुछ 'तू' होता है जैसे 'तू' ही सब कुछ है, और इस पूर्णतया शुद्ध और निश्चल वातावरण में ज़रा-सा स्पन्दन भी तेरी अभिव्यक्ति में बाधक होता है। कोई जल्दबाज़ी नहीं, कोई बेचैनी नहीं, कोई तनाव नहीं; तू, तेरे सिवाय कुछ भी नहीं, बिना विश्लेषण के या विषयनिष्ठता के, और तू बिना किसी सम्भव सन्देह के उपस्थित होता है क्योंकि सब कुछ पवित्र शान्ति और पावन नीरवता बन जाता है।

और यह संसार के सभी ध्यानों से ज़्यादा अच्छा होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १३

१८ जून १९१३

तेरी ओर मुड़ना, तेरे साथ एक होना, तेरे अन्दर और तेरे लिए जीना परम सुख, अमिश्रित आनन्द, अविकारी शान्ति है। यह शाश्वत में साँस लेना, अनन्तता में ऊपर उड़ना, अपनी सीमाओं को अनुभव न करना, देश और काल से बच निकलना है। मनुष्य इन वरदानों से ऐसे क्यों भागते हैं मानों वे उनसे डरते हों? सारे दुःख-दर्द का स्रोत अज्ञान भी क्या अजीब चीज़ है! कैसा दैन्य-भरा है वह अँधेरा जो मनुष्यों को ठीक उस चीज़ से दूर रखता है जो उनके लिए सुख लायेगी और ठीक उन चीज़ों के आधीन रखता है जो उन्हें संघर्ष और दुःख-दर्द से निर्मित सामान्य जीवन की पीड़ादायक शैली के आधीन रखती हैं!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १९

२१ फ़रवरी १९१४

हर रोज़, हर क्षण, एक नये और अधिक पूर्ण समर्पण का अवसर होना चाहिये, और कर्म के बारे में भ्रमों से भरे, उत्साहपूर्ण, घबरा देने वाले, अत्यधिक सक्रिय समर्पणों का नहीं, बल्कि गहरे और नीरव समर्पण का, जिसका दिखलायी देना ज़रूरी नहीं है पर जो सभी कर्मों में प्रवेश करता और उन्हें रूपान्तरित कर देता है। हमारे एकाकी और शान्त मन को सदा तेरे अन्दर विश्राम करना चाहिये और उस शुद्ध शिखर से वास्तविकताओं का, क्षणिक और अस्थायी आभासों के पीछे शाश्वत, एकमात्र 'सद्वस्तु' का ठीक-ठीक प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये।

हे प्रभो, मेरा हृदय सारी व्याकुलता और परिताप से शुद्ध हो गया है; वह स्थिर और अचञ्चल है और तुझे सभी चीज़ों में देखता है; और हमारे बाहरी कार्य कुछ भी क्यों न हों, भविष्य के भण्डार में हमारे लिए जो भी परिस्थितियाँ क्यों न हों, मैं जानती हूँ कि केवल तू ही जीता है, कि केवल तू ही अपने निर्विकार चिर स्थायित्व में वास्तव है और हम तेरे ही अन्दर निवास करते हैं।...

वर दे कि समस्त पृथ्वी पर शान्ति हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ५०

२८ नवम्बर १९१३

प्रकृतिस्थ निदिध्यासन की इस निश्चलता में जो और किसी भी समय की अपेक्षा पौ फटने से पहले आती है, हे हमारी सत्ता के स्वामी, मेरा विचार तेरी ओर उत्कट प्रार्थना में उठता है।...

हे दिव्य स्वामी, वर दे कि हमारे लिए यह दिन, तेरे विधान के प्रति अधिक पूर्ण उत्सर्ग की ओर उद्घाटन हो, तेरे कर्म के प्रति अपनी अधिक सर्वांगीण भेंट हो, अपनी अधिक पूर्ण विस्मृति, अधिक महान् आलोक, शुद्धतर प्रेम हो। वर दे कि तेरे साथ सदा-सर्वदा बढ़ते हुए गभीरतर, अधिक सतत और सम्पूर्ण सायुज्य में हम अधिकाधिक एक होते जायें ताकि हम तेरे योग्य सेवक बन सकें। हमारे अन्दर से समस्त अहंकार और तुच्छ घमण्ड, समस्त लोभ और अन्धकार को दूर कर दे। वर दे कि हम सब तेरे दिव्य 'प्रेम' से प्रज्वलित हों; हमें जगत् में अपनी

मशालें बना।

मेरे हृदय से पूर्व की सुवासित धूप की श्वेत धूम्र रेखा की तरह तेरी स्तुति में मौन भजन उठता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २७

२९ नवम्बर १९१३

यह शोर क्यों और यह सब हलचल क्यों, यह व्यर्थ और खोखली उत्तेजना क्यों; यह बगूला क्यों जो मनुष्यों को तूफ़ान में फँसे मक्खियों के झुण्ड की तरह उड़ाये लिये जाता है? इस नष्ट होती ऊर्जा, निरर्थक प्रयासों का दृश्य कितना दुःखद है! वे डोर में बँधी ऐसी कठपुतलियों की तरह नाचना कब बन्द करेंगे जिनका सिरा किस प्राणी या किस वस्तु के हाथ में है, यह उन्हें पता नहीं। वे इतना समय कब निकालेंगे कि चुपचाप बैठ कर अपने अन्दर जायें, अपने-आपको प्रकृतिस्थ करके उस आन्तरिक द्वार को खोल सकें जो उनसे तेरे अमूल्य कोषों, तेरे अनन्त वरदानों को छिपाता है?...

अज्ञान और अन्धकार का उनका जीवन, उनका बौराया विक्षोभ और लाभहीन छितराव का जीवन मुझे कितना पीड़ाजनक और दैन्य-भरा मालूम होता है! जब कि तेरी परम ज्योति की मात्र एक चिनगारी, तेरे दिव्य प्रेम की मात्र एक बूँद इस दुःख-दैन्य को आनन्द के सागर में बदल सकती है!

हे प्रभो, मेरी प्रार्थना तेरी ओर उठ रही है, वर दे कि अन्ततः वे तेरी शान्ति और उस अचञ्चलता और अमोघ शक्ति को जान पायें जो अविकारी निरभ्रता से आती है—जो उन लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार है जिनकी आँखें खुल गयी हैं और जो अपनी सत्ता के प्रज्वलित मर्मभाग में तेरे ऊपर ध्यानावस्थित हो सकते हैं।

लेकिन तेरी अभिव्यक्ति का समय आ गया है।

और बहुत जल्दी सब ओर से आनन्द के गीत गूँज उठेंगे।

मैं भक्ति-भाव से उस मुहूर्त की गरिमा के आगे प्रणत हूँ।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २७-२८

१७ मार्च १९१४

जब भौतिक परिस्थितियाँ ज़रा कठिन हो जायें और उनके साथ-साथ बेचैनी आये, तो अगर हम 'तेरी' इच्छा के प्रति पूरी तरह समर्पण करना जानें, मृत्यु और जीवन की, स्वास्थ्य और रोग की ज़रा भी परवाह किये बिना सम्पूर्ण सत्ता तुरन्त तेरे प्रेम और जीवन के विधान के साथ सामञ्जस्य में आ सके तो समस्त भौतिक रोग-शोक समाप्त हो जाते हैं और अपना स्थान गहरे और शान्तिमय अचञ्चल स्वास्थ्य को दे देते हैं।

मैंने देखा है कि जब हम किसी ऐसी क्रियाशीलता में प्रवेश करते हैं जिसके लिए बहुत भौतिक सहनशीलता की ज़रूरत हो तो जो चीज़ सबसे ज़्यादा थकाने वाली होती है वह है पहले से ही उन सब कठिनाइयों के बारे में सोचना जो हम पर आ सकती हैं। अधिक बुद्धिमत्ता की बात यह है कि केवल वर्तमान क्षण की मुश्किल की बात सोची जाये; इस तरीक़े से प्रयास बहुत ज़्यादा आसान हो जाता है क्योंकि वह हमेशा तुम्हारी सामर्थ्य और तुम्हारे प्रतिरोध करने की शक्ति के अनुपात में होता है। शरीर एक अद्‌भुत उपकरण है, हमारा मन ही उसका उपयोग करना नहीं जानता, उसकी नमनीयता और उसके लोच को पोषण देने की जगह वह उसके अन्दर एक प्रकार की कठोरता ले आता है जो पहले से सोचे हुए विचारों और प्रतिकूल सुझावों से आती है।

परन्तु हे प्रभो, तेरे साथ युक्त होना, तेरे ऊपर विश्वास करना, तेरे अन्दर निवास करना, स्वयं तू बन जाना ही परम विज्ञान है; तब ऐसे मनुष्य के लिए कोई चीज़ असम्भव नहीं रहती जो तेरी सर्वशक्तिमत्ता को अभिव्यक्त करता है।

प्रभो, मेरी अभीप्सा एक मूक स्तवन की तरह, एक मौन आराधना की तरह तेरी ओर उठती है और तेरा दिव्य प्रेम मेरे हृदय को आलोकित करता है।

हे दिव्य स्वामी, मैं तुझे नमन करती हूँ!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ६२-६३

४ जनवरी १९१४

जड़-भौतिक विचारों की बाढ़ हमेशा घात में रहती है, तनिक-सी दुर्बलता की प्रतीक्षा में रहती है, और अगर हम क्षण-भर के लिए भी अपनी जागरूकता में ढील करें, हम चाहे जितने भी कम लापरवाह हों, वह आगे झपट पड़ती है और सब ओर से हम पर आक्रमण करती है और कभी-कभी अपनी भारी बाढ़ में अनगिनत प्रयासों के परिणाम को डुबा देती है। तब सत्ता एक प्रकार की निष्क्रियता में प्रवेश करती है, खाने-पीने और सोने की उसकी भौतिक आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं, उसकी बुद्धि भरमा जाती है, उसकी आन्तरिक दृष्टि पर परदा पड़ जाता है और इन बाहरी क्रियाओं में ज़रा भी सच्चा रस न होने के बावजूद वे लगभग पूरी तरह उस पर कब्ज़ा कर लेती हैं। यह अवस्था बहुत कष्टदायक और थकाने वाली होती है क्योंकि जड़-भौतिक विचारों से बढ़ कर थकाने वाली और कोई चीज़ नहीं होती, और थका हुआ मन पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह दुःख पाता है जो उड़ान भरने की अभीप्सा तो करता है पर पंख फैलाने-लायक़ भी नहीं होता।

लेकिन शायद, इस स्थिति में भी कोई ऐसी उपयोगिता है जिसे मैं नहीं देख पाती...। बहरहाल, मैं ज़रा भी संघर्ष नहीं करती; और माँ की बाँहों में बच्चे की तरह, गुरु के चरणों में पड़े एक भक्तिमय शिष्य की तरह मैं तेरे ऊपर दृढ़ विश्वास रखती हूँ और अपने-आपको तेरी विजय के विश्वास के साथ, तेरे मार्ग-दर्शन के अर्पण करती हूँ।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ३२

१५ फ़रवरी १९१४

हे तू, एकमात्र परम 'सद्वस्तु', हमारे प्रकाश के प्रकाश और हमारे जीवन के जीवन, हे परम प्रेम, हे संसार के त्राता, वर दे कि मैं तेरी सतत उपस्थिति की अभिज्ञता के बारे में पूर्णतया अधिकाधिक जाग्रत् हो सकूँ। वर दे कि मेरे सभी कर्म तेरे विधान का समर्थन करें; कृपा कर कि तेरी इच्छा और मेरी इच्छा के बीच कोई फ़र्क न रहे। मुझे मेरे मन की भ्रामक चेतना में से निकाल, मन की कपोल-कल्पनाओं के जगत् से निकाल; वर दे कि मैं अपनी चेतना को तेरी निरपेक्ष चेतना के साथ तदात्म कर सकूँ

क्योंकि वह तू ही है।

लक्ष्य को पाने के लिए मेरी इच्छा को सातत्य प्रदान कर, मुझे वह दृढ़ता, वह ऊर्जा और वह साहस प्रदान कर जो समस्त जड़ता और शिथिलता को झाड़ फेंक सके।

मुझे पूर्ण निस्स्वार्थता की शान्ति प्रदान कर, ऐसी शान्ति जो तेरी उपस्थिति का अनुभव कराये और तेरे हस्तक्षेप को प्रभावकारी बनाये, ऐसी शान्ति जो सदा समस्त दुर्भावना और प्रत्येक अन्धकार पर विजयी हो।

मैं अनुनय करती हूँ कि मुझे ऐसा वर दे कि मेरी सत्ता का सब कुछ तेरे साथ एकात्म हो जाये। वर दे कि मैं तेरी परम उपलब्धि की ओर पूर्णतः जाग्रत् प्रेम की ज्वाला के सिवा अब और कुछ न होऊँ।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ४८

२३ जून १९१४

तू ही रूपान्तर की प्रभुसत्तात्मक शक्ति है, तू उन सबके ऊपर क्रिया क्यों न करे जो हमारी मध्यस्थता द्वारा तेरे सम्पर्क में आये हैं? हमें तेरी शक्ति पर श्रद्धा नहीं है : हम हमेशा सोचते हैं कि मनुष्यों को अपने सचेतन विचार में इस पूर्ण रूपान्तर के सिद्ध होने की इच्छा करनी चाहिये; हम भूल जाते हैं कि उनके अन्दर तू ही इच्छा करता है और तू इस तरह इच्छा कर सकता है कि उनकी सारी सत्ता उससे प्रकाशित हो जाये...। हम तेरी शक्ति पर सन्देह करते हैं हे प्रभो, और इस प्रकार उसके लिए अयोग्य साधन बन जाते हैं और उसकी रूपान्तरकारी शक्ति के एक बड़े भाग को ढक देते हैं।

ओह, हमें वह श्रद्धा प्रदान कर जिसकी हमारे अन्दर कमी है; हमें ब्योरे की निश्चिति प्रदान कर जिसकी हमारे अन्दर कमी है। हमें सोचने और निर्णय करने के सामान्य तरीक़े से मुक्त कर; वर दे कि हम तेरे अनन्त प्रेम की चेतना में रहें और हर क्षण उसे कार्य में रत देख सकें और उसकी चेतना के द्वारा हम उसे सत्ता की अत्यन्त भौतिक अवस्था के साथ सम्पर्क में ला सकें...।

हे प्रभो, हमें समस्त अज्ञान से मुक्त कर, हमें सच्ची श्रद्धा प्रदान कर।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १०७

३ अप्रैल १९१४[१]

मुझे ऐसा लगता है कि मैं एक नये जीवन में जन्म ले रही हूँ और अब भूतकाल के सभी तौर-तरीक़े और अभ्यास उपयोगी नहीं रह सकते। मुझे लगता है कि जिन्हें मैं परिणाम समझती थी वे एक तैयारी से बढ़ कर कुछ नहीं हैं। मुझे लगता है कि मैंने अभी तक कुछ भी नहीं किया है, मानों मैंने अभी तक आध्यात्मिक जीवन जिया ही नहीं, केवल उस पथ पर चरण रखे हैं जो उस ओर ले जाता है; मुझे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं जानती, कि मैं किसी भी चीज़ को रूपायित करने में असमर्थ हूँ, कि सारा अनुभव अभी शुरू होने को है। ऐसा लगता है कि मुझे समस्त अतीत से अनावृत कर दिया गया है, उसकी भूलों से भी और साथ ही उसकी विजयों से भी, मानों वह सब ग़ायब हो गया है और एक नवजात शिशु के लिए जगह तैयार कर दी गयी है जिसे अभी सारा जीवन जीना है, जिसका कोई कर्म नहीं है, कोई अनुभव नहीं है जिससे वह सीख सके, लेकिन साथ ही जिसकी कोई भूल भी नहीं है जिसे ठीक करना हो। मेरा मस्तिष्क समस्त ज्ञान और समस्त निश्चिति से ख़ाली है, साथ ही व्यर्थ के समस्त विचारों से भी। मुझे लगता है कि अगर मैं इस स्थिति के आगे किसी प्रतिरोध के बिना समर्पण करना सीख लूँ, अगर मैं जानने या समझने की कोशिश न करूँ, अगर मैं पूरी तरह एक अबोध और निष्कपट बालक की तरह होना स्वीकार कर लूँ, तो मेरे आगे कोई नयी सम्भावना खुल जायेगी। मैं जानती हूँ कि अब मुझे अपने-आपको निश्चित रूप से दे देना चाहिये और बिलकुल कोरे काग़ज़ की तरह बन जाना चाहिये जिस पर हे नाथ, तेरा विचार, तेरी इच्छा, किसी भी विकृति के भय के बिना मुक्त रूप से आलेखित की जा सके।

एक विशाल कृतज्ञता मेरे हृदय से उठती है, मुझे लगता है कि आख़िर मैं उस देहली तक पहुँच चुकी हूँ जिसकी मुझे इतनी खोज थी।

[१] २९ मार्च १९१४ को श्रीमाँ पॉण्डिचेरी में श्रीअरविन्द से मिलीं तथा ३० मार्च १९१४ में उन्होंने अपनी 'डायरी' में लिखा : इसका कोई महत्त्व नहीं है कि हज़ारों सत्ताएँ गहनतम अज्ञान में धँसी हुई हैं, जिन्हें हमने कल देखा था वे तो पृथ्वी पर हैं; उनकी उपस्थिति यह प्रमाणित करने के लिए काफ़ी है कि एक दिन आयेगा जब अन्धकार प्रकाश में रूपान्तरित हो जायेगा और पृथ्वी पर तेरा शासन सचमुच प्रतिष्ठित हो जायेगा।

हे प्रभो, वर दे कि मैं पर्याप्त रूप से शुद्ध, निर्वैयक्तिक, तेरे दिव्य प्रेम से अनुप्राणित हो सकूँ ताकि निश्चित रूप से यह चौखट पार कर सकूँ।

ओह, बिना किसी विघ्न-बाधा के, बिना किसी अन्धकार के तेरा ही हो जाना!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ७१-७२

१० अप्रैल १९१४

अचानक परदा फट गया, क्षितिज प्रकट हो गया—और स्पष्ट अन्तर्दर्शन के आगे मेरी सारी सत्ता ने अपने-आपको कृतज्ञता से विभोर तथा अभिभूत होकर तेरे चरणों के आगे डाल दिया। फिर भी इस गहरे और सम्पूर्ण आनन्द के बावजूद, सब कुछ शाश्वत की शान्ति के साथ अचञ्चल और शान्त था।

ऐसा लगता है कि मेरी कोई सीमाएँ नहीं रहीं; अब शरीर का बोध नहीं रहा, कोई संवेदन, कोई भावनाएँ, कोई विचार नहीं रहे—एक स्पष्ट, शुद्ध, शान्त विशालता प्रेम और प्रकाश के साथ व्याप्त हो गयी और जो कुछ है वह अकथनीय आनन्द के साथ भर गया और मुझे लगता है कि अब वही मैं हूँ और यह "मैं" पहले के स्वार्थी, सीमित "अहं" से इतना कम मिलता है कि मैं यह नहीं कह सकती कि यह "मैं" है या "तू", हे प्रभो, हमारी नियतियों के अलौकिक स्वामी।

ऐसा लगता है मानों सब कुछ ऊर्जा, साहस, शक्ति, इच्छा, अनन्त मधुरता, अतुलनीय अनुकम्पा हो।...

इन पिछले कुछ दिनों की अपेक्षा ज़्यादा ज़ोर से अतीत मर गया है और मानों नवजीवन की किरणों के नीचे गाड़ दिया गया है। इस पुस्तक के कुछ पृष्ठ पढ़ते हुए मैंने जो आख़िरी नज़र पीछे की ओर डाली, उसने मुझे इस मृत्यु के बारे में निश्चित रूप से विश्वास दिला दिया है, बहुत बड़े भार से हलकी होकर, हे मेरे दिव्य स्वामी, मैं अपने-आपको एक बालक की सारी सरलता और सारी नग्नता के साथ तेरे आगे प्रस्तुत करती हूँ।... और फिर भी एकमात्र चीज़ जिसका मैं अनुभव करती हूँ वह है अचञ्चल और शुद्ध विशालता।...

प्रभो, तूने मेरी प्रार्थना का उत्तर दे दिया है, तूने मुझे वह वरदान दिया है जो मैंने तुझ से माँगा था। "अहं" ग़ायब हो गया है, अब केवल एक

विनीत यन्त्र रह गया है जिसे तेरी सेवा में प्रस्तुत किया गया है, जो तेरी अनन्त और शाश्वत किरणों की एकाग्रता और अभिव्यक्ति का केन्द्र है; तूने मेरे जीवन को लेकर अपना बना लिया है; तूने मेरी इच्छा को लेकर अपनी इच्छा के साथ युक्त कर लिया है; तूने मेरे प्रेम को लेकर अपने प्रेम के साथ तदात्म कर लिया है; तूने मेरे विचार को लेकर उसके स्थान पर अपनी निरपेक्ष चेतना को बिठा दिया है।

विस्मित शरीर मौन, समर्पणपूर्ण आराधना में धूलि में अपना मस्तक नवाता है।

अपनी निर्विकार शान्ति की भव्यता में तेरे सिवा और किसी का अस्तित्व नहीं है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ७४-७५

१७ नवम्बर १९१४

ओह, अलौकिक जननी, कितना असीम होगा तेरा धैर्य! हर बार जब तेरी सचेतन इच्छा भूल-भ्रान्तियों को ठीक करने, अपने ही ज्ञान के भ्रम में भटके हुए व्यक्ति की अनिश्चित प्रगति को तेज़ करने, निश्चित पथ को खोजने और व्यक्ति को इतनी सामर्थ्य देने के लिए कि वह बिना लड़खड़ाये उस पर सीधा चल सके, अपने-आपको अभिव्यक्त करने का प्रयास करती है तो प्रायः हमेशा ही वह तुझे एक थकाने वाला और अदूरदर्शी सलाहकार मान कर धकेल देता है। वह सिद्धान्त में तुझ से प्रेम करने को तैयार है —किसी अस्पष्ट और असंलग्न प्रेम के साथ—लेकिन उसका घमण्डी मन तेरे ऊपर विश्वास करने से इन्कार करता है और तेरे पथ-प्रदर्शन में आगे बढ़ने की जगह अपने-आप इधर-उधर भटकना ज़्यादा पसन्द करता है।

और तू अपने सदा अनथक हितचिन्ताभरे स्मित के साथ उत्तर देती है : "यह बौद्धिक क्षमता जो मनुष्य को गर्वीला बनाती और भूल-भ्रान्ति की ओर ले जाती है, वही है जो एक बार यदि प्रबुद्ध और शुद्ध हो जाये तो उसे वैश्व प्रकृति से आगे, उससे ऊपर, हमारे प्रभु के साथ, जो सारी अभिव्यक्ति के परे है, सचेतन सायुज्य की ओर ले जाती है। यह विभाजक बुद्धि जो उसे मुझसे अलग खड़ा करती है, वही उसे इस योग्य भी बनाती है कि जिन शिखरों पर उसे उठना है उन पर तेज़ी से चढ़ जाये और सकल

विश्व उसकी प्रगति को जकड़ न सके और न ही उसमें देर लगा सके क्योंकि विश्व की विशालता और जटिलता इतनी तेज़ चढ़ाई नहीं होने देती।"

हे दिव्य जननी, तेरी वाणी हमेशा आश्वासन और आशीर्वाद देती है, शान्ति और प्रकाश देती है और तेरा उदार हाथ अनन्त ज्ञान को छिपाने वाले परदे की एक तह को उठा देता है।

तेरे पूर्ण ध्यान की दीप्ति कितनी शान्त, उदात्त और पावनकारी है!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १५६

२० नवम्बर १९१४

हे प्रभो, मैं तेरे सम्मुख सदा एक कोरे पृष्ठ की तरह रहना चाहूँगी ताकि मेरे अन्दर तेरी इच्छा किसी भी कठिनाई या किसी भी मिश्रण के बिना लिखी जा सके।

कभी-कभी विचार से पिछली अनुभूतियों की स्मृति तक बुहार फेंकनी ज़रूरी होती है ताकि वे सतत नव-निर्माण के कार्य में बाधक न हों। केवल यही एक चीज़ है जो सापेक्षताओं के जगत् में तेरी पूर्ण अभिव्यक्ति को आने की अनुमति देती है।

बहुधा व्यक्ति उस चीज़ से चिपटा रहता है जो थी, उसे बहुमूल्य अनुभूति के परिणाम को खो देने का, एक विस्तृत और उच्च चेतना के छूट जाने का, निचली अवस्था में जा गिरने का भय रहता है।

लेकिन उसे किस बात का खटका जो तेरा है, क्या वह तेरे रेखांकित किये हुए पथ पर, वह चाहे कोई भी पथ क्यों न हो, चाहे उसकी सीमित समझ के लिए एकदम अबोधगम्य क्यों न हो, क्या वह उस पर आनन्दमय आत्मा और प्रबुद्ध भ्रू के साथ नहीं चल सकता?

हे प्रभो, विचार के पुराने ढाँचों को तोड़ दे, प्राचीन अनुभूतियों को लुप्त कर दे और अगर तू ज़रूरी समझे तो सचेतन समन्वय को भी विघटित कर दे ताकि तेरा कार्य अधिकाधिक अच्छी तरह पूरा हो, धरती पर तेरी सेवा पूर्ण हो सके।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १५६-५७

१० जनवरी १९१७

तो क्या तू मुझे यह सिखाना चाहता है कि हर प्रयास जिसका लक्ष्य मेरी अपनी सत्ता हो, बेकार और व्यर्थ होगा? केवल वही कार्य सरलता से और सफलता के साथ पूरा होता है जिसका उद्देश्य हो तेरी कृपा को विकीरित करना। जब इच्छा बाहरी जीवन में कार्य करती है तो वह समर्थ और प्रभावकारी होती है; जब वह भीतर जाने का अभ्यास करने की कोशिश करती है तो वह बलहीन और प्रभावहीन होती है।... इसलिए व्यक्तिगत प्रगति के लिए किया गया हर एक कार्य अधिकाधिक असफल और परिणामतः विरल से विरलतर होता जाता है। दूसरी ओर, ऐसा लगता है कि समस्त बाहरी कर्म प्रभाव में उतना ही लाभ पाता है जितना भीतरी कर्म खोता है। इस भाँति, हे प्रभो, तू यन्त्र को जैसा वह है वैसा ही लेता है, और अगर उसे परिष्कृत करना है तो वह कर्म करते-करते हो जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १९७-९८

१० दिसम्बर १९१४

सुन, हे प्रभो... गहरे ध्यान की नीरवता में मेरी प्रार्थना तीव्र रूप से तेरी ओर उठ रही है।

क्या यह बहुत बड़ी मूर्खता नहीं है कि व्यक्ति विचार के किसी एक रूप के साथ, एक मानसिक रचना के साथ इतना तदात्म हो जाये—वह चाहे जितनी विशाल और समर्थ क्यों न हो—कि उसे अपनी सत्ता का, अपनी अनुभूति और क्रियाओं का जीवन्त केन्द्र बना ले? हम सत्य के बारे में जो कुछ सोच या कह सकते हैं सत्य उससे शाश्वत रूप से परे है। इस सत्य के साथ ताल-मेल में ठीक बैठने वाली, सबसे अधिक अनुकूल अभिव्यञ्जना को खोजने की कोशिश करना निश्चय ही उपयोगी, बल्कि यूँ कहें, स्वयं अपने विकास की पूर्णता के लिए ही नहीं बल्कि सारी मानवजाति के लिए अनिवार्य कार्य है; लेकिन हमें हमेशा इस अभिव्यक्ति के आगे अपने-आपको मुक्त अनुभव करना चाहिये, हमें अपनी चेतना के केन्द्र को उसके ऊपर, उस वास्तविकता में रखना चाहिये जो किसी मानसिक सूत्र की महिमा, सुन्दरता और पूर्णता के बावजूद हर सूत्र से छटक जाती है। जगत् वैसा नहीं है जैसा कि हम उसे समझते हैं। उसके बारे में हमारा जो विचार है

उसका महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि कर्म के बारे में हमारी जो धारणा है उस पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है; और हो सकता है कि यह वृत्ति किसी बहुत अधिक गहरी, अधिक सच्ची और अधिक अपरिवर्तनशील प्रेरणा से आये न कि किसी मानसिक रचना से, वह रचना चाहे जितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो। अपने अन्दर इस इच्छा को अनुभव करना अच्छा है कि हम मनुष्यों के लिए, अभी तक जो कुछ प्रकट हुआ है उससे अधिक पूर्ण, उच्चतर और अधिक यथार्थ रूप में शाश्वत सत्य को प्रकट कर सकें; लेकिन शर्त यह है कि हम अपने "स्व" को इस कार्य के साथ इस हद तक तदात्म न कर लें कि उसके दास बन जायें और उसके सामने अपनी स्वाधीनता और आत्म-नियन्त्रण खो बैठें। यह केवल एक क्रियाशीलता है, उससे बढ़ कर कुछ नहीं, पार्थिव दृष्टि से उसका चाहे जितना महत्त्व क्यों न हो; लेकिन यह कभी न भूलना चाहिये कि और सब क्रियाओं की तरह यह भी सापेक्ष है और इसे हमारी गहरी शान्ति और अविकारी अचञ्चलता को कभी क्षुब्ध न करने देना चाहिये क्योंकि वही दिव्य शक्तियों को किसी भी विकृति के बिना अभिव्यक्त होने देती है।

हे प्रभो, मेरी प्रार्थना शब्दों में पिरोयी हुई नहीं है, परन्तु तू उस पर कान देता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १५८-५९

११ जनवरी १९१५

पहले की अपेक्षा कहीं अधिक, मनोमय पुरुष की अभीप्सा तेरी ओर बड़े उत्साह के साथ उठी।... अनन्तता और शाश्वतता का प्रत्यक्ष दर्शन सदा रहता है। परन्तु ऐसा लगता है कि तूने इच्छा की है कि मुझे समस्त धार्मिक प्रसन्नता और आध्यात्मिक आनन्द से काट कर बहुत कठोर जड़-भौतिक परिस्थितियों में डुबा दिया जाये। हे प्रभो, तेरा पूर्ण आनन्द हर जगह है और तूने मुझे उसका जो महान् उपहार दिया है उसे कोई भी मुझसे नहीं छीन सकता; हर स्थान पर, हर परिस्थिति में वह मेरे साथ है, जैसे कि मैं तू हूँ उसी तरह वह मैं ही है। लेकिन जो होना चाहिये उसके आगे यह सब कुछ भी नहीं है। तू चाहता है कि इस भारी और धुँधले जड़-पदार्थ के हृदय में से मेरे द्वारा तेरे प्रेम और प्रकाश का ज्वालामुखी फट

पड़े; तू चाहता है कि भाषा की सभी पुरानी रूढ़ियों को तोड़ कर कोई ऐसा 'शब्द' निकले जो तुझे प्रकट करने के योग्य हो, एक ऐसा 'शब्द' जो पहले कभी न सुना गया हो; तू चाहता है कि नीचे की छोटी-से-छोटी चीज़ों और ऊपर की विशालतम और उत्कृष्टतम चीज़ों के बीच सम्पूर्ण ऐक्य स्थापित हो जाये; और इसी कारण हे प्रभो, तूने मुझे सारे धार्मिक सुख और आध्यात्मिक आनन्द से काट कर, ऐकान्तिक रूप से तेरे ऊपर एकाग्र होने की समस्त स्वाधीनता से वञ्चित करके तूने मुझसे कहा, "सामान्य लोगों के बीच एक सामान्य व्यक्ति की तरह काम कर, जो कुछ अभिव्यक्त हो रहा है उसके अन्दर वे जो कुछ हैं उससे अधिक तू कुछ भी बनना न सीख, उनके जीवन के सभी तौर-तरीक़ों में भाग ले क्योंकि जो कुछ वे जानते हैं, जो कुछ वे हैं, उसके परे तू अपने अन्दर शाश्वत प्रदीप्ति की मशाल लिये है जो कभी काँपती तक नहीं, और तू उनके साथ मिल-जुल कर उनके बीच यही प्रदीप्ति ले आयेगी। जब तक यह प्रकाश तेरे द्वारा सभी में विकीरित होता रहे तब तक क्या तुझे उसका आनन्द लेने की ज़रूरत है? जब तक तू मेरे स्पन्दित होते हुए प्रेम को औरों में बाँटती रहे तब तक क्या तुझे उसे अनुभव करने की ज़रूरत है? जब तक तू औरों के बीच मेरी उपस्थिति के यन्त्र के रूप में कार्य करती रहे तो क्या यह ज़रूरी है कि तू उस उपस्थिति का पूरी तरह रसास्वादन करे?"

हे प्रभो, तेरी इच्छा पूर्ण हो, सर्वांगीण रूप से पूर्ण हो।

यही मेरा सुख और यही मेरा विधान है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १६२-६३

१६ जुलाई १९१४

मेरे मौन और विनम्र पूजा-भाव के साथ प्रणाम।...

मैं तेरी महिमा के आगे नमन करती हूँ क्योंकि वह अपनी सारी भव्यता के साथ मुझ पर छा जाती है।...

कृपा कर कि मैं तेरे चरणों में समा जाऊँ, तेरे अन्दर विलीन हो जाऊँ!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ११८

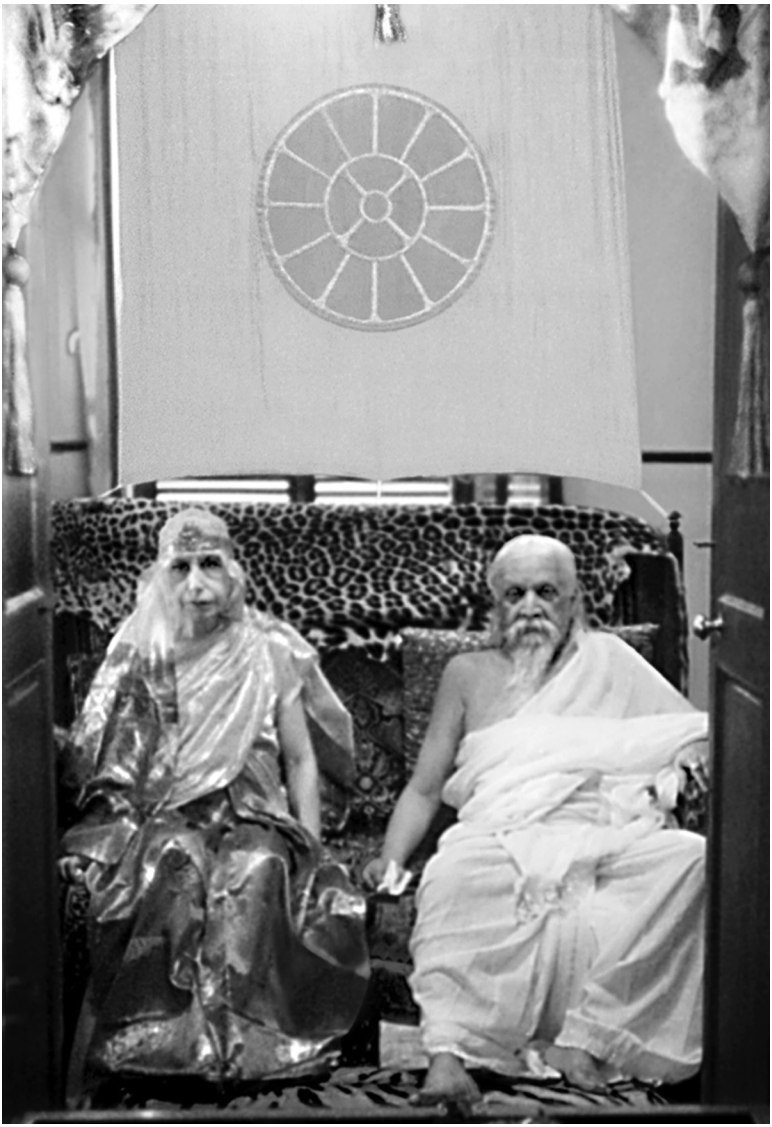

अहो, हमने परमेश्वर का दिव्य दर्शन पाया है,
हमारा जीवन अब दिव्यता के साथ उद्‌घाटित हो गया है।

'सावित्री', पृ. ७१९

२३ अक्तूबर १९३७

(उन लोगों के लिए एक प्रार्थना जो भगवान् की सेवा करना चाहते हैं)

हे प्रभो! हे सर्वविघ्नविनाशक! तेरी जय हो!

वर दे कि हमारे अन्दर की कोई भी चीज़ तेरे कार्य में बाधक न हो।

वर दे कि कोई भी चीज़ तेरी अभिव्यक्ति में रुकावट न डाले।

वर दे कि हर वस्तु में तथा प्रत्येक क्षण तेरी ही इच्छा पूर्ण हो।

हम यहाँ तेरे सम्मुख उपस्थित हैं ताकि हमारे अन्दर, हमारी सत्ता के अंग-प्रत्यंग में, उसके प्रत्येक कार्य में, उसकी सर्वोच्च ऊँचाइयों से लेकर शरीर के क्षुद्रतम कोषों तक में तेरी ही इच्छा कार्यान्वित हो।

ऐसी कृपा कर कि हम तेरे प्रति सम्पूर्ण रूप से और सदा के लिए एकनिष्ठ बन सकें।

हम अन्य सब प्रभावों से अलग रहते हुए पूरी तरह तेरे ही प्रभाव के अधीन हो जाना चाहते हैं।

वर दे कि हम तेरे प्रति एक गभीर और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

कृपा कर कि प्रत्येक क्षण हमें जो अद्‌भुत वस्तुएँ तेरी देन के रूप में मिलती हैं, उनमें से किसी का भी कभी अपव्यय न करें।

ऐसा वर दे कि हमारे अन्दर की प्रत्येक चीज़ तेरे कार्य में सहयोग दे और सब कुछ तेरी सिद्धि के लिए तैयार हो जाये।

तेरी जय हो, हे परमेश्वर! हे समस्त सिद्धियों के अधीश्वर!

तू हमें अपनी 'विजय' में सक्रिय और ज्वलन्त, अखण्ड और अचल-अटल विश्वास प्रदान कर।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २१६

दैनन्दिन जीवन में आध्यात्मिकता का अभ्यास

अपना निजी आध्यात्मिक वातावरण बनाओ

... यथार्थ में, आन्तरिक अनुशासन द्वारा; अपने विचारों पर संयम रख कर, उन्हें ऐकान्तिक रूप से साधना की ओर मोड़ कर, अपनी क्रियाओं पर संयम करके और उन्हें ऐकान्तिक रूप से साधना की ओर मोड़ कर, समस्त कामनाओं और व्यर्थ के बाह्य, साधारण क्रिया-कलाप का उन्मूलन करके, अधिक तीव्र आन्तरिक जीवन जी कर, सामान्य चीज़ों से, सामान्य विचारों से, सामान्य प्रतिक्रियाओं से, सामान्य क्रियाओं से अपने-आपको अलग करके तुम अपने चारों ओर अपना वातावरण बना सकते हो।

उदाहरण के लिए, कोई भी ऊटपटाँग चीज़ पढ़ने, गप्पें लगाने और कुछ भी करने की जगह, अगर तुम केवल वही पढ़ो जो तुम्हें मार्ग का अनुसरण करने में सहायता दे, अगर तुम केवल उसी के समर्थन में कार्य करो जो तुम्हें भागवत उपलब्धि की ओर ले जाये, अगर तुम अपने अन्दर से सभी कामनाओं और बाहर की ओर मुड़े हुए आवेगों का उन्मूलन कर सको, अगर तुम अपने मनोमय पुरुष को शान्त कर लो, अपनी प्राणिक सत्ता को शान्त कर लो, अगर तुम बाहर से आने वाले सुझावों की ओर से अपने-आपको बन्द कर लो और अपने चारों तरफ़ के लोगों की क्रिया से अपने-आपको अस्पृष्ट बना लो, तो तुम एक *ऐसा* आध्यात्मिक वातावरण बना लोगे कि उसे कुछ भी न छू सकेगा, वह *इसके बाद* परिस्थितियों पर *ज़रा भी* निर्भर न होगा या तुम कहाँ, किसके साथ या किन परिस्थितियों में रहते हो इसका ज़रा भी असर न होगा, क्योंकि तुम अपने ही आध्यात्मिक वातावरण से घिरे रहोगे। और उसे पाने का तरीक़ा यह है : अपना ध्यान **एकमात्र** आध्यात्मिक जीवन की ओर मोड़ना, केवल वही पढ़ना जो आध्यात्मिक जीवन में लाभ पहुँचा सके, केवल वही करना जो तुम्हें आध्यात्मिक जीवन की ओर ले जाये, आदि-आदि। तब तुम अपना निजी वातावरण पैदा कर लेते हो। लेकिन अगर तुम सभी दरवाज़े खोल दो, लोग जो कुछ कहें वह सब सुनो, इसकी राय और उसकी प्रेरणा का अनुसरण करो और बाहरी चीज़ों के लिए कामनाओं से भरे रहो, तो स्वाभाविक है कि तुम अपने लिए आध्यात्मिक वातावरण नहीं बना सकते। तुम्हारा वातावरण साधारण-सा होगा, जैसा औरों का होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४०३-०४

हमारे लिए अनन्त खुला है, उसमें डुबकी लगाओ

... जब तुम किसी चीज़ से ऊब जाओ, जब कोई चीज़ तुम्हें कष्टदायक या बहुत अप्रिय लगे, उस समय यदि तुम काल की शाश्वतता के बारे में, देश की असीमता के बारे में सोचना शुरू करो, अगर तुम उस सबके बारे में सोचो जो बीत चुका है, और उस सबके बारे में सोचो जो होने वाला है, और यह देखो कि यह सेकेण्ड सचमुच शाश्वतता में एक चलती हुई साँस के जैसा है, और यह एकदम बेतुकी बात मालूम होती है कि कोई ऐसी बात पर परेशान हो उठे जो काल की अनन्तता में... तुम्हारे पास उससे अवगत होने के लिए समय भी नहीं है, उसका कोई स्थान नहीं है, कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि सचमुच, शाश्वतता में एक सेकेण्ड क्या है? अगर तुम इसे समझ सको... इसे कैसे कहा जाये?... अगर तुम यह देख सको, अगर अपने अन्दर यह चित्र बना सको कि इस छोटी-सी धरती पर तुम कितने छोटे-से व्यक्ति हो, और चेतना का वह ज़रा-सा सेकेण्ड, जो इस समय तुम्हें कष्ट दे रहा है, या इतना अप्रिय हो रहा है—बस, यही, जो तुम्हारे अपने जीवन में बस, एक सेकेण्डमात्र है; तुम स्वयं पहले बहुत-सी चीज़ें रह चुके हो, और बहुत-सी चीज़ें भविष्य में बनोगे, और अभी जिस चीज़ का इतना असर हो रहा है, उसे सम्भवतः तुम अगले दस वर्षों में पूरी तरह भूल जाओगे, और अगर तुम्हें इसकी याद रही भी तो तुम कहोगे: "मैंने इसे कोई महत्त्व कैसे दे दिया था?"... अगर तुम पहले इस चीज़ का अनुभव कर सको, और फिर, यह देखो कि तुम्हारा अपना छोटा-सा व्यक्तित्व, जो शाश्वतता में एक सेकेण्ड या एक सेकेण्ड के बराबर भी नहीं है, समझे, लगभग अदृश्य, शाश्वतता में एक सेकेण्ड का भाग भी नहीं, इससे पहले एक पूरा जगत् फैलता रहा है और इसके बाद भी फैलेगा, अनिश्चित काल तक—सामने, पीछे—और... तो अचानक तुम्हें पता लगता है कि तुम्हारे साथ जो हुआ था उसे इतना अधिक महत्त्व देना कितना हास्यास्पद है...। **सचमुच** तुम्हें लगता है... कि अपने जीवन को, अपने-आपको या अपने साथ बीती बातों को महत्त्व देना कितना निरर्थक है। और अगर तीन मिनट के अन्दर-अन्दर तुम इसे **ठीक तरह** कर सको तो सारी अप्रियता दूर हो सकती है, गहरी पीड़ा भी दूर हो सकती है। सिर्फ़ इस तरह की एकाग्रता, और अपने-आपको अनन्तता तथा शाश्वतता में रखना। सब कुछ चला जाता

है। तुम उसमें से शुद्ध होकर निकलते हो। तुम इस तरह **सभी** आसक्तियों से भी पिण्ड छुड़ा सकते हो, यहाँ तक कि मैं कहती हूँ, गहरे-से-गहरे दुःख से भी—इसी तरह हर चीज़ से मुक्त हो सकते हो—अगर तुम इसे ठीक तरह करना जानो। यह तुम्हें तुरन्त अपने छोटे-से अहंकार में से बाहर ले आता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३९०-९१

अपने-आपको विशालता के भाव से अभिभूत न होने दो बल्कि उसमें ख़ुशी से और शान्ति के साथ स्नान करो। अगर हम अपरिहार्य रूप से अपनी व्यक्तिगत चेतना की चारदीवारी में बन्द होते तो यह सचमुच दुःखद होता और हम पर हावी रहता—लेकिन अनन्त हमारे लिए खुला हुआ है; हमें बस उसमें डुबकी लगानी है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. २७८

भिन्न प्रकार का ध्यान

ध्यान करना बड़ा कठिन है। ध्यान कई प्रकार के हैं...। तुम एक विचार को ले सकते हो और एक विशेष परिणाम पर पहुँचने के लिए उसका अनुसरण कर सकते हो—यह एक प्रकार का सक्रिय ध्यान है; जो लोग कोई समस्या सुलझाने का प्रयास करते हैं या जो लोग लिखना चाहते हैं वे यह जाने बिना कि वे ध्यान कर रहे हैं, इस प्रकार ध्यान करते हैं। दूसरे, बैठ जाते और किसी चीज़ पर एकाग्र होने का प्रयत्न करते हैं, वे किसी विचार का अनुगमन नहीं करते; वे बस एक बिन्दु पर एकाग्र होने का प्रयास करते हैं जिससे कि उनकी एकाग्रता की शक्ति घनीभूत हो उठे। और तब वही घटित होता है जो साधारणतया एक बिन्दु पर एकाग्र होने पर घटित होता है : यदि तुम एक बिन्दु पर—वह चाहे मानसिक, प्राणिक या भौतिक हो—अपनी एकाग्रता की क्षमता को पर्याप्त रूप में एकत्र करने में सफलता पा लेते हो तो एक विशेष मुहूर्त में तुम आगे बढ़ जाते हो और एक दूसरी चेतना में प्रवेश कर जाते हो। फिर दूसरे लोग अपने मस्तक में से सारी क्रियाओं, विचारों, प्रक्षेपों, प्रतिक्रियाओं को निकाल बाहर करने की चेष्टा करते हैं और यथार्थ रूप में एक प्रकार की निश्चल-नीरव प्रशान्ति

को प्राप्त करते हैं। यह अत्यन्त कठिन कार्य है। कुछ लोगों ने २५ वर्षों तक इसका प्रयास किया पर वे सफल नहीं हुए, क्योंकि यह काम कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा कि किसी साँड को सींगों से पकड़ना।

एक दूसरे प्रकार का ध्यान है जिसमें मनुष्य जहाँ तक सम्भव होता है, शान्त-स्थिर रहता है, परन्तु सभी विचारों को बन्द कर देने का प्रयास नहीं करता, क्योंकि कुछ विचार ऐसे होते हैं जो निरे यन्त्रवत् होते हैं और यदि तुम उन्हें बन्द करने की कोशिश करो तो उसमें तुम्हें वर्षों लग जायेंगे और फिर भी इस प्रयास में तुम फल के विषय में निस्सन्दिग्ध नहीं हो सकते। उसके स्थान पर तुम अपनी सम्पूर्ण चेतना को एक साथ एकत्र कर लेते हो और जितना सम्भव होता है उतने स्थिर और शान्त बने रहते हो; तुम बाहरी चीज़ों से इस तरह अपने को पृथक् कर लेते हो मानों उनमें तुम्हें बिलकुल रस नहीं है, और एकाएक तुम अभीप्सा की उस लौ को उद्दीप्त कर लेते हो और जो कुछ तुम्हारे पास आता है उसे उसमें झोंक देते हो ताकि वह लौ अधिकाधिक, अधिकाधिक ऊपर उठे; तुम उसके साथ एकात्म हो जाते हो और अपनी चेतना और अभीप्सा के चरम शिखर तक ऊपर चले जाते हो—उस समय तुम किसी दूसरी चीज़ के बारे में सोचते तक नहीं—केवल एक अभीप्सा होती है जो ऊपर उठती है, ऊपर ही ऊपर उठती चली जाती है, परिणाम का एक क्षण भी विचार नहीं आता, क्या होगा और विशेष रूप से, क्या नहीं होगा, इसका ज़रा भी विचार नहीं रहता और सबसे बढ़ कर, तुम्हारे लिए कोई चीज़ घटित हो इसकी इच्छा रखने का विचार भी नहीं होता—बस होता है उस अभीप्सा का आनन्द जो ऊपर उठती है, ऊपर ही ऊपर उठती जाती है, अधिकाधिक तीव्र होती हुई एक सतत एकाग्रता में बदल जाती है। और तब, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि, सबसे उत्तम बात जो घटित हो सकती है वही घटित होती है। कहने का तात्पर्य, उस समय, जब तुम इसे करते हो तब, तुम्हारे अन्दर की अधिक-से-अधिक सम्भावनाएँ ही चरितार्थ होती हैं। ये सम्भावनाएँ व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत भिन्न प्रकार की हो सकती हैं। परन्तु उस समय निश्चल-नीरव होने, बाह्य रूपों के पीछे जाने, उत्तर देने वाली शक्ति को पुकारने, अपने प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक्षा करने आदि की चेष्टा करने की सारी चिन्ता मिथ्या कुहासे की तरह विलीन हो जाती है।

और यदि इस लौ के अन्दर, ऊपर उठने वाली अभीप्सा के इस स्तम्भ के अन्दर सचेतन रूप से रहने में तुम सफल होओ तो देखोगे कि यद्यपि तुम्हें तुरत कोई परिणाम नहीं प्राप्त होता, फिर भी कुछ समय बाद कुछ-न-कुछ तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १२२-२३

काले तत्त्वों को अपने अन्दर से उखाड़ फेंको

माँ, पिछली बार आपने कहा था कि अक्सर हमारे अन्दर एक काला तत्त्व होता है... जो हमें सुझाव देता है... जो हमसे बेवकूफ़ियाँ करवाता है। इसलिए आपने कहा था कि जब भी हम इस तत्त्व से अभिज्ञ हों, हमें इसे उखाड़ फेंकना चाहिये। लेकिन क्या उखाड़ने का अर्थ है... उदाहरण के लिए, जब हमें पता चल जाये कि यह तत्त्व हमसे कोई बेवकूफ़ी करवाने आया है, तब अगर हम संकल्प द्वारा वह करने से रुक जायें तो क्या हम कह सकते हैं कि हमने उसे उखाड़ फेंका है?

... उसके लिए, सबसे पहले, तुम्हें उसके बारे में सचेतन होना होगा, समझे, उसे अपने ठीक सामने रखो, और उन कड़ियों को काट दो जो उसे तुम्हारी चेतना के साथ बाँधे रखती हैं। यह आन्तरिक मनोविज्ञान का काम है, समझे।

अपने-आपका बहुत ध्यान से अध्ययन करने पर तुम देख सकते हो...। उदाहरण के लिए, अगर तुम अपना निरीक्षण करो तो देखोगे कि एक दिन तुम बहुत उदार होते हो। यही लें, इसे समझना आसान है। बहुत उदार : अपनी भावनाओं में उदार, अपने संवेदनों में उदार, अपने विचारों में उदार, यहाँ तक कि भौतिक चीज़ों में भी उदार; यानी, तुम दूसरों के दोष समझते हो, उनके इरादे, उनकी कमज़ोरियाँ, यहाँ तक कि दुष्ट गतिविधियाँ भी समझते हो। तुम यह सब देखते हो, और सद्भावनाओं से, उदारता से भरे होते हो। तुम अपने-आपसे कहते हो : "ठीक है... हर एक भरसक अच्छे-से-अच्छा करता ही है!"—इसी तरह।

दूसरे दिन—या शायद अगले ही क्षण—तुम अपने अन्दर एक प्रकार

की शुष्कता, कठोरता देखोगे, कोई चीज़ जो कड़वी है, जो कठोर रूप से मूल्यांकन करती है, यहाँ तक कि जिसमें मनमुटाव है, विद्वेष है, जो यह चाहती है कि अपराधी को सज़ा दी जाये, जिसमें लगभग बदले के भाव हैं; जो पहले भाव से ठीक विपरीत है! एक दिन कोई तुम्हें चोट पहुँचाता है तो तुम कहते हो: "कोई बात नहीं! वह जानता न था"...या: "वह अन्यथा नहीं कर सकता था..." या: "उसका स्वभाव ही ऐसा है"... या: "वह समझ नहीं सका!" अगले दिन—या हो सकता है कि घण्टे-भर बाद ही—तुम कहते हो: "उसको सज़ा मिलनी चाहिये! उसे उसके किये का फल मिलना ही चाहिये! उसे यह महसूस कराना चाहिये कि उसने ग़लती की है!"—एक प्रकार के रोष के साथ ऐसा कहते हो; और तुम चीज़ें लेना चाहते हो, उन्हें अपने लिए रखना चाहते हो, तुम्हारे अन्दर ईर्ष्या, जलन, संकीर्णता की ये भावनाएँ होती हैं, है न, जो दूसरी भावना के ठीक विपरीत हैं।

यह है अँधेरा पक्ष। और तब, जिस क्षण तुम उसे देखते हो, अगर तुम उसे देखो और यह न कहो: "यह मैं हूँ," अगर तुम कहो: "नहीं, यह मेरी छाया है, मुझे इस सत्ता को अपने अन्दर से निकाल फेंकना चाहिये", तो तुम उस पर दूसरे पक्ष का प्रकाश डालते हो, तुम उन्हें आमने-सामने लाने की कोशिश करते हो। और इस दूसरे पक्ष के ज्ञान और प्रकाश के साथ, तुम उसे विश्वास दिलाने की बहुत कोशिश नहीं करते—क्योंकि यह बहुत कठिन है—बल्कि तुम उसे चुप रहने के लिए बाधित करते हो... पहले तो उसे दूर रखने की कोशिश करते हो, और फिर उस पर बहुत तेज़ प्रकाश डाल कर उसे बहुत दूर खदेड़ देते हो ताकि वह फिर लौट न सके। ऐसे उदाहरण हैं जहाँ परिवर्तित करना सम्भव है, लेकिन वह बहुत विरल है। ऐसे उदाहरण हैं जब तुम इस सत्ता पर—या इस छाया पर—इतना तीव्र प्रकाश डाल सकते हो कि वह उसे रूपान्तरित कर देता है, और वह छाया उस चीज़ में बदल जाती है जो तुम्हारी सत्ता का सत्य है।

लेकिन यह एक विरल चीज़ है...। यह सम्भव है, लेकिन है बहुत विरल। साधारणतः, सबसे अच्छी चीज़ है यह कहना: "नहीं, यह मैं नहीं हूँ! मैं यह नहीं चाहता! इस गति के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, मेरे लिए इसका अस्तित्व ही नहीं, यह मेरे स्वभाव से उलटी है!" और तब,

ज़ोर देते-देते, उसे धकेलते-धकेलते, अन्त में तुम अपने-आपको उससे अलग कर लेते हो।

लेकिन अपने अन्दर संघर्ष को देख सकने के लिए पहले तुम्हें पर्याप्त रूप से स्पष्ट और सच्चा होना चाहिये। साधारणतः तुम इन चीज़ों की ओर ध्यान नहीं देते। तुम एक सिरे से दूसरे पर जा पहुँचते हो। है न, हम कह सकते हैं, बहुत सरल शब्दों में कह सकते हैं; एक दिन मैं अच्छा होता हूँ, अगले दिन दुष्ट। और यह बिलकुल स्वाभाविक लगता है...। यहाँ तक कि कभी-कभी एक घण्टे तुम अच्छे होते हो और अगले घण्टे बुरे; या फिर, दिन-भर अच्छे रहते हो और फिर अचानक दुष्ट बन जाते हो, एक क्षण बहुत दुष्ट, उतने ही दुष्ट जितने कि अच्छे थे! केवल तुम उनका अवलोकन नहीं करते, तुम्हारे मन में हिंसापूर्ण, बुरे और घृणा से भरे तथा ऐसे ही दूसरे विचार आते हैं... साधारणतः तुम ध्यान नहीं देते। लेकिन इसी को तो पकड़ना है! ज्यों ही वह व्यक्त हो तुम्हें उसे इस तरह पकड़ लेना चाहिये *(माताजी संकेत करती हैं)*, बहुत दृढ़ पकड़ के साथ, और फिर उसे प्रकाश के सामने पकड़े रखना, पकड़े रखना और कहना, "नहीं! मैं तुम्हें नहीं चाहता! मैं—तुम्हें—नहीं चाहता! इसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं! तुम यहाँ से चले जाओ, और फिर वापस न आना!"

(थोड़ी चुप्पी के बाद) और यह एक ऐसी चीज़—ऐसी अनुभूति है जो तुम्हें रोज़ हो सकती है, या लगभग... जब तुम्हारे अन्दर बड़े उत्साह, बड़ी अभीप्सा की गतियाँ होती हैं, जब तुम अचानक दिव्य लक्ष्य के प्रति, भगवान् के लिए आतुरता के प्रति, इस इच्छा के प्रति सचेतन हो जाते हो कि भगवान् के कार्य में भाग लेना है, जब तुम अपने अन्दर से बहुत आनन्द और बहुत शक्ति के साथ बाहर निकल आते हो... और फिर, कुछ घण्टे बाद, किसी नगण्य-सी चीज़ के लिए, तुम दुःखी हो जाते हो! तुम अपने इतने नीच, इतने सँकरे, इतने गँवारू स्वार्थ की ओर लौट आते हो, तुम्हारी इच्छा इतनी मन्द पड़ जाती है... और पहले का वह सब भाप बन कर उड़ जाता है, मानों वह कभी था ही नहीं। तुम विरोध के बहुत आदी होते हो; तुम इधर ध्यान ही नहीं देते और इसी कारण ये सारी चीज़ें पड़ोसियों की तरह आराम से रहने लगती हैं। पहले उन्हें ढूँढ़ निकालना चाहिये, और उन्हें अपनी चेतना में घुल-मिल जाने से रोकना चाहिये : उनका अलग-अलग

चुनाव करो, छाया से प्रकाश को अलग करो। बाद में तुम छाया से छुटकारा पा सकते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २९८-३०२

उतावली में अपना भरसक अच्छे-से-अच्छा कैसे करें?

जब कोई काम करता है और भरसक अच्छे-से-अच्छा करना चाहता है तो उसे समय की आवश्यकता होती है। परन्तु साधारणतया हमारे पास बहुत अधिक समय नहीं होता, हमें हमेशा उतावली रहती है। जब हम उतावली में हों तो हम भरसक अच्छे-से-अच्छा कैसे कर सकते हैं?

यह बहुत ही रोचक विषय है और मैं इसके बारे में पूरे ब्योरे के साथ एक दिन तुम लोगों को बताना चाहती थी। सामान्य तौर पर जब मनुष्य जल्दबाज़ी में होते हैं तो जो काम उन्हें करना होता है उसे वे पूरे रूप में नहीं करते अथवा जो कुछ वे करते हैं उसे बुरे रूप में करते हैं। परन्तु एक तीसरा तरीक़ा भी है, वह है अपनी एकाग्रता को तीव्र बना देना। यदि तुम ऐसा करो तो तुम आधा समय, यहाँ तक कि बहुत थोड़े समय में से भी, बचा लोगे। एक बहुत सामान्य उदाहरण ही ले लो : स्नान करके कपड़े पहनना; इसमें जो समय लगता है वह हर मनुष्य के लिए अलग होता है, होता है न? परन्तु हम मान लें कि समय खोये बिना और जल्दबाज़ी किये बिना सब कुछ कर लेने के लिए आधे घण्टे की आवश्यकता है। अब, यदि तुम उतावली में हो तो दो बातों में से एक होती है : तुम उतनी अच्छी तरह स्नान नहीं करते अथवा ठीक तरह से कपड़े नहीं पहनते! परन्तु एक दूसरा तरीक़ा है—अपने ध्यान को और अपनी शक्ति को एकाग्र कर लेना, जो कुछ कर रहे हो बस उसी की बात सोचो, अन्य किसी चीज़ की नहीं, बहुत अधिक गति मत करो, अत्यन्त समुचित ढंग से बिलकुल ठीक गति करो, और (यह जीवन में उतारा हुआ अनुभव है, मैं निश्चिति के साथ यह बात कह सकती हूँ) तुम महज़ तीव्र एकाग्रता के द्वारा, जिसे पहले आध घण्टे में करते थे, पन्द्रह मिनट में कर लोगे, और उतनी ही अच्छी तरह, कभी-कभी उससे भी अधिक अच्छी तरह कर लोगे, न तो

कोई चीज़ भूलोगे और न कोई चीज़ छोड़ोगे ही।

और यह उन लोगों के लिए सबसे अच्छा उत्तर है जो कहते हैं, "ओह! यदि कोई अच्छी तरह कार्य करना चाहता है तो उसे समय अवश्य मिलना चाहिये।" यह सच नहीं है। क्योंकि तुम चाहे जो कुछ करो—पढ़ना, खेलना, कार्य—बस, केवल एक ही समाधान है : एकाग्र होने की अपनी शक्ति को बढ़ाना। और जब तुम इस एकाग्रता को प्राप्त कर लेते हो तो वह फिर थकाने वाली नहीं होती। स्वाभाविक है कि प्रारम्भ में, इसमें एक प्रकार का तनाव पैदा होता है, पर जब तुम इसके अभ्यस्त हो जाते हो तो तनाव कम हो जाता है, और एक समय ऐसा आता है जब तुम्हें इस प्रकार एकाग्र न होने के कारण, अपने-आपको छितरा देने के कारण, सभी प्रकार की चीज़ों का अपने को शिकार बन जाने देने के कारण तथा जो कुछ करना है उस पर एकाग्र न होने के कारण थकावट आती है। मनुष्य एकाग्रता की शक्ति के द्वारा और अधिक अच्छी तरह तथा अधिक शीघ्रता से कार्य पूरा करने में सफल हो सकता है। इस प्रकार तुम कर्म का उपयोग विकास के साधन के रूप में कर सकते हो; अन्यथा तुम्हें यह धुँधला-सा ख़याल बना रहेगा कि कर्म "निष्काम भाव" से सम्पन्न करना चाहिये, परन्तु इसमें एक बड़ा ख़तरा है, क्योंकि मनुष्य बड़ी तेज़ी से उदासीनता को ही निष्काम भाव मानने की भूल कर बैठता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १६२-६४

ख़ाली समय का उपयोग करना

जीवन के प्रवाह में कितनी ही बार एक तरह का ख़ालीपन आता है, एक व्यस्तताहीन क्षण, कुछ मिनट, कभी-कभी ज़्यादा भी। तब तुम क्या करते हो? उसी क्षण तुम दिल बहलाव की चेष्टा करते हो और अपना समय काटने के लिए कोई-न-कोई मूर्खता खोज निकालते हो। यह एक सामान्य तथ्य है, मनुष्य, छोटे से लेकर बड़े तक, अपने समय का अधिकांश अपने-आपको ऊब से बचाने में बिताता है। उसके लिए ऊब ही सबसे बड़ा हौआ है और ऊब से बचने का उपाय है, बहुत सारी मूर्खताएँ करना।

ख़ैर, एक और उपाय है जो उससे कहीं अधिक अच्छा है। वह है —स्मरण करना।

जब तुम्हारे पास थोड़ा समय हो, चाहे वह एक घण्टा हो या कुछ मिनट, अपने-आपसे कहो: "आख़िर! अपने-आपको केन्द्रित करने का, अपने-आपको इकट्ठा करने का, अपने जीवन के मूल कारण को फिर से जीने का और जो 'सत्य' और 'सनातन' है उसे अपने-आपको समर्पित करने का मेरे पास समय है।" हर बार जब तुम बाहरी परिस्थितियों से परेशान न होओ तब अगर तुम यह करने की सावधानी बरतो तो देखोगे कि तुम राह पर बहुत जल्दी बढ़ते जा रहे हो। अपना समय बकवास में, अनावश्यक चीज़ें करने में और ऐसी चीज़ें पढ़ने में गँवाने की जगह, जो चेतना को गिराती हैं—यह तो अच्छी-से-अच्छी दशाओं के चुनाव की बात है, मैं दूसरी मूर्खताओं की बात ही नहीं करती जो बहुत ज़्यादा गम्भीर होती हैं—अपने को चकराने की जगह, ऐसा करने की जगह कि समय जो पहले से ही कम है और भी कम हो जाये और फिर देखना कि जीवन के अन्त में हमने तीन-चौथाई अवसर खो दिये हैं—तब फिर तुम दोनो हाथों से कौर निगलने लगते हो, लेकिन उससे कोई फ़ायदा नहीं होता—ज़्यादा अच्छा है संयत होना, सन्तुलित होना, धैर्यवान् होना, शान्त होना और दिये गये अवसर को कभी न गँवाना। इसका मतलब है कि तुम्हारे सामने जो मिनट व्यस्तताहीन होता है उसका सच्चे ध्येय के लिए उपयोग करना।

जब तुम्हारे पास करने के लिए कुछ न हो तो तुम क्षुब्ध हो उठते हो, तुम भागते फिरते हो, मित्रों से मिलने चले जाते हो, घूमने निकल पड़ते हो—मैं मात्र अच्छी चीज़ों की ही बात कर रही हूँ, मैं उन चीज़ों की बात नहीं करना चाहती जो स्पष्ट रूप से ऐसी हैं जिन्हें नहीं करना चाहिये—इन सबकी जगह शान्तिपूर्वक, तुम्हारे लिए जो सम्भव हो उसके अनुसार, आकाश के नीचे, समुद्र के सामने या पेड़ों तले बैठ जाओ (यहाँ तो सब कुछ है), और इनमें से किसी एक चीज़ को सिद्ध करने की कोशिश करो, यह समझने की कोशिश करो कि तुम क्यों जीवित हो और यह सीखने की कोशिश करो कि किस तरह जीना चाहिये। इस पर विचार करो कि तुम क्या करना चाहते हो और क्या करना चाहिये। 'अज्ञान', 'मिथ्यात्व' और 'दुःख', जिसमें तुम जीते हो, उससे बच निकलने का उत्तम उपाय क्या है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २७८-७९

दिन-प्रति-दिन अन्तर में पैठना अनिवार्य है

हम पढ़ते हैं, हम समझने की चेष्टा करते हैं, हम व्याख्या करते हैं, हम जानने की कोशिश करते हैं। पर सच्चे अनुभव का एक ही क्षण हमें हज़ारों शब्दों और सैकड़ों व्याख्याओं से कहीं अधिक सिखा देता है।

अतएव पहला प्रश्न है : "किस तरह अनुभव प्राप्त किया जाये?"

अपने भीतर पैठ जाओ, बस यही है पहला पग।

और एक बार जब तुम इतनी पर्याप्त गहराई में प्रवेश करने में सफल हो चुको कि जो कुछ अन्दर विद्यमान है उसके सत्य को अनुभव कर सको तब अपने-आपको फैलाओ, धीरे-धीरे और सुव्यवस्थित रूप में स्वयं को विस्तारित करो और विश्व के समान विशाल बन कर सीमा की भावना को खो दो।

तैयारी करने के लिए ये दो क्रियाएँ सबसे पहले आवश्यक हैं।

और इन दोनों कार्यों को यथासम्भव अधिक-से-अधिक पूर्ण स्थिरता, शान्ति और निश्चलता में करना होगा। यह शान्ति, यह निश्चलता मन में निश्चल-नीरवता उत्पन्न करती है और प्राण के अन्दर अचलता ले आती है।

इस प्रयास को, इस चेष्टा को तुम्हें बहुत नियमित रूप से और अध्यवसाय के साथ दोहराते रहना होगा और कुछ दिनों के बाद, कम या अधिक दीर्घकाल के बाद, तुम एक ऐसे सत्य को देखना आरम्भ कर दोगे जो तुम्हारी सामान्य बाहरी चेतना में दिखायी देने वाले सत्य से भिन्न होगा।

स्वभावतः, भागवत कृपा के प्रभाव के कारण, अकस्मात्, एक आन्तरिक परदा फट सकता है और तुम यथार्थ सत्य के अन्दर तुरत प्रवेश कर सकते हो; परन्तु ऐसा जब होता है तब भी, यदि तुम उसका पूरा-पूरा मूल्य, महत्त्व और उसका पूर्ण प्रभाव प्राप्त करना चाहो तो तुम्हें अपने-आपको आन्तरिक ग्रहणशीलता की स्थिति में बनाये रखना होगा और उसके लिए दिन-प्रति-दिन अन्तर में पैठना अनिवार्य है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २४-२५

कृतज्ञता की अग्निशिखा निरन्तर जलती रहे

कृतज्ञ होने का अर्थ है : इस अद्‌भुत भागवत कृपा को कभी न भूलना जो हर एक को—चाहे वह कैसा भी क्यों न हो, अज्ञान और ग़लतफ़हमियों

से, अहंकार, विरोध और विद्रोह से भरा हो—छोटे-से-छोटे पथ से उसके लक्ष्य तक ले जाती है।

कृतज्ञता की पवित्र अग्निशिखा हमारे हृदय में निरन्तर जलती रहे, ऊष्माभरी मधुर और भास्वर शिखा जो सारे अहं और तमसाछन्नता को मिटा दे; उस परम की कृपा के प्रति कृतज्ञता की शिखा जो साधक को उसके लक्ष्य तक ले जाती है—और जितना वह कृतज्ञ होगा, कृपा की इस क्रिया को जितना पहचानेगा और इसके प्रति आभार मानेगा, उतना ही छोटा होगा उस तक जाने का पन्थ।

('सफ़ेद गुलाब' २६.६.१९६४ पृ. १५५)

... सभी गतियों में, जो शायद सबसे अधिक हर्ष प्रदान करती है—जो अमिश्रित आनन्द देती है, जो अहंकार से दूषित नहीं होती—वह है सहज कृतज्ञता। यह बहुत ही विशेष वस्तु है। यह प्रेम नहीं है, यह आत्मदान नहीं है। यह बहुत **पूर्ण** हर्ष है। लबालब हर्ष।

यह बहुत ही विशेष स्पन्दन होता है, इसके जैसा और कोई स्पन्दन नहीं, यह अपने-आपमें पूर्ण है। यह ऐसी वस्तु है जो तुम्हें विशाल बना देती है, तुम्हें आकण्ठ भर देती है, कितना उत्साहपूर्ण होता है यह स्पन्दन! मानव चेतना की पहुँच के अन्दर जितनी गतियाँ हैं, निश्चित रूप से यह ऐसी गति है जो तुम्हें अहंकार से अधिक-से-अधिक बाहर निकाल लाती है।...

जब तुम इस स्पन्दन की पवित्रता में इसके अन्दर प्रवेश कर सको तो तुम्हें तुरन्त यह ज्ञान हो जाता है कि इसमें 'प्रेम' के स्पन्दन के समान गुण होता है : यह दिशा से बँधा नहीं होता...

अन्ततः, कृतज्ञता में बस 'प्रेम' के तात्त्विक स्पन्दन की बहुत हलकी रंगीन आभा होती है।

२१ दिसम्बर १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

शान्ति के साथ ख़ुश रहने से बढ़ कर
भगवान् के प्रति कृतज्ञता दिखाने का
और कोई बेहतर तरीक़ा नहीं है।

श्रीमाँ

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

फ़रवरी

१. हम अपने प्रयास में स्थिर और अपने निश्चय में शान्त और दृढ़ रहें तो निश्चय ही लक्ष्य तक जा पहुँचेंगे।

२. अध्यवसाय द्वारा ही व्यक्ति कठिनाइयों को जीत सकता है, उनसे भाग कर नहीं। जो डटा रहे उसका जीतना निश्चित है।

३. केवल एक ही चीज़ है जो तुम्हें किसी चीज़ की परवाह किये बिना अपने मार्ग पर सीधा जाने का अधिकार देती है : और वह है ऐसी स्थिति जिसमें तुम्हें उच्चतर सत्य ने आगे बढ़ाया हो, गति दी हो। लेकिन तुम्हें उसका विश्वास होना चाहिये।

४. चलो, प्रसन्न हो जाओ, अगर हम डटे रहना और सहन करना जानें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।

५. पहले तुम्हें सत्य-चेतना प्राप्त करनी चाहिये, भगवान् के साथ सम्पर्क रखना चाहिये और उन्हें अपनी क्रियाओं का नियन्त्रण करने देना चाहिये; तब तुम बाहरी परिस्थितियों पर क्रिया कर सकोगे, बाहरी क्रियाओं पर भी, और तभी बाहरी कठिनाइयों पर विजय पा सकोगे।

६. तुम प्रगति इसलिए करते हो क्योंकि तुम्हें अपने अन्दर उसके लिए आवश्यकता मालूम होती है, क्योंकि यह एक प्रेरणा है जो तुम्हें सहज रूप से आगे बढ़ाती है, वह तुम्हारे ऊपर नियम के रूप में लादी नहीं गयी है—आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यह प्रगति कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

७. तुम सच्चे अर्थों में पूरी तरह तभी शुद्ध होते हो जब सारी सत्ता अपनी सभी गतियों और सभी तत्त्वों के साथ, ऐकान्तिक रूप से भागवत इच्छा के साथ जुड़ी हो।

८. कभी अपनी निम्न प्रकृति से प्रतिक्रिया न करो।... तुम्हारे अन्दर जो बहुत ही सामान्य चीज़ है, उसे लेकर प्रतिक्रिया न करो। अपने अन्दर पैठो, अपने अन्दर के सर्वोत्तम भाग को पाने की कोशिश करो और उसके अनुसार प्रतिक्रिया करो। *यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।*

९. इस क्षण जो चीज़ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है वह है चेतना का परिवर्तन।

१०. बच्चों के लिए, और ठीक इस कारण कि वे बच्चे हैं, ज़्यादा अच्छा यह होगा कि उनके अन्दर भविष्य को जीतने का संकल्प भरा जाये, हमेशा आगे नज़र रखने का और जितनी तेज़ी से हो सके उतनी तेज़ी से जो होने वाला है उसकी ओर गति करने का संकल्प।

११. बौद्धिक रूप से सत्य वह बिन्दु है जहाँ सभी विरोध मिलते हैं और मिल कर एकता का निर्माण करते हैं।
व्यावहारिक रूप से सत्य है अहंकार का उत्सर्ग ताकि भगवान् का जन्म और उनकी अभिव्यक्ति सम्भव हो सके।

१२. हम एक ऐसी जाति चाहते हैं जिसमें अहंकार न हो, जिसमें अहंकार के स्थान पर दिव्य चेतना हो, हमें उसी की चाह है—ऐसी भागवत चेतना जो जाति को विकसित करेगी और अतिमानसिक सत्ता को जन्म देगी।

१३. अनुकम्पा क्षमा और दया का पर्याय है। यह बल और दयालुता से भरपूर दया है जो भूलों का परिमार्जन करती और क्षमा करती है, सभी अपराधों को मिटा देती है और हमेशा वही चाहती है जो प्रत्येक के लिए अच्छे-से-अच्छा है।

१४. ज्ञान हमेशा अज्ञान से अधिक अच्छा होता है। यह अगर उस समय नहीं तो बाद में भी वस्तुओं को सम्भव बनाता है, जब कि अज्ञान सक्रिय रूप से बाधा देता और पथभ्रष्ट करता है।

१५. अभिरुचि एक अन्धी चीज़ है, एक प्रकार का आवेग, एक तरह की आसक्ति, एक अचेतन क्रिया है, और यह सामान्यतया भयानक रूप में दुराग्रही होती है।

१६. प्रधानतया, प्रारम्भ-बिन्दु है अपने-आपका निरीक्षण करना; एक सतत चञ्चलता में, एक अनवरत लापरवाही में निवास न करना। हमें हमेशा सतर्क रहना चाहिये।

१७. यदि कोई विश्व में बना रहना चाहे तो उसे प्रगति के सिद्धान्त को अवश्य स्वीकार करना होगा, क्योंकि यह एक प्रगतिशील विश्व है।

१८. कार्य भगवान् के प्रति आत्म-समर्पण करने का साधन है, लेकिन उसे

आवश्यक आन्तरिक चेतना के साथ करना चाहिये जिसमें बाहरी प्राण और शरीर भी भाग लें।

१९. सभी अहंकारमय हेतुओं से मुक्त, वाणी और क्रिया में सत्य के प्रति सावधान, स्वाग्रह और स्वेच्छा-रहित, सभी चीज़ों के बारे में चौकन्ना —यह है निर्दोष सेवक होने की शर्त।

२०. जीवन में हमें वही करना चाहिये जो हमारे सामने करने-लायक़ सच्ची चीज़ के रूप में प्रकट किया गया हो, चाहे दूसरे हमारी हँसी उड़ायें या आलोचना करें, क्योंकि लोगों के मतों का कोई मूल्य नहीं है, एकमात्र भागवत इच्छा ही सच्ची है और उसी की विजय होगी।

२१. भक्ति का स्वभाव है उसके प्रति आराधना, पूजा, आत्मदान जो तुमसे बड़ा है। प्रेम का स्वभाव है निकटता और ऐक्य के लिए भावना या खोज। आत्मदान दोनों का गुण है। योग में दोनों ज़रूरी हैं। हर एक को अपना पूरा बल तभी मिलता है जब उसे दूसरे का सहारा प्राप्त हो।

२२. भागवत जीवन में सब कुछ भगवान् के लिए है, अहंकार के लिए नहीं।

२३. अपने-आप में, भावों में, प्रेम, विषाद, दुःख, निराशा, भावमय सुख इत्यादि में रस लेना और उन पर मानसिक-प्राणिक ज़ोर देना भावुकता कहलाता है। गहरी भावना में स्थिरता, संयम, पवित्र नियन्त्रण और मर्यादा होने चाहियें। तुम्हें अपनी भावनाओं और अपने संवेदनों के वश में नहीं होना चाहिये, बल्कि सदा अपना स्वामी होना चाहिये।

२४. खोजने में एक आनन्द है, प्रतीक्षा करने में आनन्द है, अभीप्सा करने में आनन्द है, कम-से-कम उतना ही अधिक जितना अधिकार कर लेने में है।

२५. सच्चा प्रेम अपनी तीव्रता में *बहुत गहरा* और बहुत अचञ्चल होता है। यह अवश्य हो सकता है कि वह अपने-आपको उल्लास द्वारा प्रकट न करे।

२६. कामना करना असमर्थ होना है, अपनी सीमाओं को स्वीकार करना और उन्हें जीतने में अपनी अक्षमता मान लेना है।

२७. व्यक्तिगत सत्ता एक भजन है जो नित नया होता रहता है, जिसे विश्व तेरी कल्पनातीत भव्यता को अर्पित करता है।

२८. पथ-प्रदर्शन तुम्हारे हृदय में है। अपनी प्रेरणा के अनुसार आगे बढ़ो।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नींद और स्वप्न

(१)

स्वप्न बहुत-से कामों में आ सकते हैं। आज हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि हम उनका उपयोग कैसे कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मुसीबत से बचने के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। हम भूत, भविष्य और वर्तमान की घटनाओं के स्वप्नों के बारे में देखेंगे। हम देखेंगे कि वे कैसे आते हैं और वे कैसे समस्याओं को हल करने में सहायता दे सकते हैं। आओ, पहले हम पूर्व-सूचना देने वाले स्वप्नों को लेते हैं। इनमें से एक बहुत प्रसिद्ध स्वप्न है राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का। उन्होंने अपने-आप एक भोज के समय सुनाया था। उन्होंने विलाप करते हुए लोगों की आवाज़ें सुनीं। उन्होंने इन आवाज़ों का पीछा किया और राष्ट्रपति के बड़े कक्ष में आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ एक कफ़न देखा जिस पर सिपाही पहरा दे रहे थे। उन्होंने पूछा, "यह क्या मामला है?" एक सिपाही ने जवाब दिया, "महाशय, राष्ट्रपति की हत्या हो गयी है।" स्वप्न आख़िर स्वप्न होते हैं। लेकिन दो महीने के अन्दर लिंकन की हत्या हो गयी। तो यह पूर्व-सूचना का स्वप्न था जो सच्चा निकला। स्वभावतः यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या लिंकन अपनी हत्या से बच सकते थे?

लो, यह रहा एक और स्वप्न जो माताजी ने अपनी कक्षा में सुनाया था। एक आदमी कहीं यात्रा पर गया हुआ था और किसी होटल में ठहरा हुआ था। उसने स्वप्न में घण्टीवाले एक लड़के को देखा जो एक कफ़न की तरफ़ इशारा कर रहा था और उससे कह रहा था कि तुम इसमें घुस जाओ। वह सवेरे उठा तो बहुत परेशान था। वह एक बड़े होटल की छठी या सातवीं मंज़िल में रहता था। वह नीचे उतरा और लिफ़्ट की ओर बढ़ा तो देखा कि लिफ़्ट का लड़का देखने में ठीक वैसा ही था जैसा उसे स्वप्न में दिखायी दिया था। लड़का उसे लिफ़्ट की ओर इशारा कर रहा था और अन्दर आने के लिए कह रहा था। उसे स्वप्न की याद हो आयी और उसने धन्यवाद कह कर मना कर दिया और सीढ़ी से उतर कर नीचे

चला गया। इसी बीच लिफ़्ट टूट गयी और उसके अन्दर के सभी लोग मर गये। बस यही एक आदमी बच गया। माताजी से पूछा गया कि वह कौन था जिसने इस आदमी को बचा लिया? उन्होंने कहा कि वह कोई शुभ सत्ता थी जिसने उसे सावधान कर दिया।

आगे चलने से पहले मैं यह बतलाना चाहूँगा कि भौतिक, प्राणिक आदि ऐसे बहुत-से स्तर होते हैं जिनमें अच्छी और बुरी सब तरह की सत्ताएँ होती हैं। अगर संयोग से हमारा शुभ सत्ताओं के साथ सम्पर्क हो जाये तो वे सन्मार्ग दिखाती हैं। योग में उनके साथ हमारा सचेतन रूप से सम्पर्क हो सकता है। या अगर तुम योग नहीं भी कर रहे लेकिन हो सकता है कि पिछले जन्म के किसी अनुभव के कारण या किन्हीं और कारणों से इन सत्ताओं से सम्पर्क हो जाये। माताजी ने कहा है कि उस घटना में किसी आन्तरिक सत्ता ने उस आदमी का पथ-प्रदर्शन किया था। अगर वह उस संकेत को न पकड़ पाता तो वह भी और लोगों की तरह लिफ़्ट में ही समाप्त हो जाता।

राष्ट्रपति लिंकन को जो संकेत दिया गया था दुर्भाग्यवश वे उससे लाभ न उठा पाये। आध्यात्मिक दृष्टि से लिंकन एक महान् व्यक्ति थे। बहुत महान्, यद्यपि योगी न थे। शायद वे जानते थे कि उनके जाने का समय हो गया है इसलिए उन्होंने परवाह न की।... हमें भगवान् की योजना के बारे में कुछ पता नहीं होता। योग में तुम अपने स्वप्नों के बारे में सचेतन हो सकते हो। तुम चेतना के ऐसे स्तर तक जा सकते हो जहाँ से अपने भूत और भविष्य को देख सकते हो। आधुनिक विज्ञान बहुत-से अन्वेषण कर रहा है। भूतकाल की खोजों के बारे में एक मज़ेदार स्वप्न है। पेनसिलवानिया विश्व-विद्यालय के एक प्राध्यापक की एक घटना है। वह बाबुल की भाषा का प्राध्यापक था। उसके पास किसी प्रदर्शनी से कुछ अँगूठियाँ आयी थीं जिन पर कुछ खुदा हुआ था और पढ़ा न जा रहा था। वह इस समस्या को मन में लिये हुए ही सो गया। उसने स्वप्न में देखा कि कोई मिस्री पुजारी आकर उसे किसी मन्दिर में ले गया। चूँकि वह बाबुल की भाषा का ज्ञाता था उसने पहचान लिया कि यह आदमी ईसा से कई शताब्दी पहले का है। पुजारी उसे ज़मीन से नीचे के एक तहख़ाने में ले गया जहाँ बहुत-से गहने, बरतन और अन्य चीज़ें थीं। स्वप्न में ही पुजारी ने प्राध्यापक से

कहा कि वह जो चीज़ें देख रहा था वे अँगूठियाँ नहीं बालियाँ थीं। एक राजा किसी मूर्ति के लिए गहने बनवाना चाहता था। वह कुछ बालियाँ भी बनवाना चाहता था, लेकिन उसके पास काफ़ी गहने नहीं थे। वहाँ एक कलश था जिस पर कुछ लिखा था, उसने कलश की गरदन कटवा कर बालियाँ बनवा लीं। लेकिन अक्षरों को बीच से काटा गया था, उन्हें जोड़ कर शब्द पढ़े जा सकते थे।

प्राध्यापक नींद में से उठ गया और अपने अध्ययन-कक्ष में जाकर बालियों को ठीक ढंग से रखा और वह लिखी हुई बात को पढ़ पाया। वह आश्चर्य में पड़ गया। उसने मिस्र की सरकार को लिख कर पूछा कि क्या उस शताब्दी के अवशेष कहीं सुरक्षित रखे थे। उसे बतलाया गया कि वे इस्तानबूल में होंगे। अमरीकन यूनिवर्सिटियाँ ऐसे खोज के कार्यों के लिए छुट्टी देने में बहुत उदार होती हैं। वह छुट्टी लेकर इस्तानबूल जा पहुँचा। उसे वहाँ पर वही गहने देख कर आश्चर्य हुआ जो उसने स्वप्न में देखे थे। कलश तीन जगहों से टूटा हुआ था और जब टुकड़ों को जोड़ा गया तो वे कलश की गरदन पर बिलकुल ठीक बैठ गये।

तो चेतना का एक स्तर है, कुछ लोग अचानक वहाँ जा पहुँचते हैं और कुछ योग के द्वारा। उनसे हम भूत, भविष्य और वर्तमान को जान सकते हैं। यह कैसे होता है? मान लो तुम किसी इमारत की चालीसवीं मंज़िल पर जाते हो। जब तुम वहाँ खड़े होते हो और दूर से एक गाड़ी को आते हुए देखते हो जिसे तुम्हारी इमारत तक आने में पाँच मिनट लगेंगे और उसके पाँच मिनट बाद वह रास्ते के दूसरे सिरे पर होगी, तो यह गाड़ी तुम्हारे लिए वर्तमान में है और सबसे नीचे की मंज़िलवाले के लिए वह भविष्य में है क्योंकि वह उसके सामने पाँच मिनट बाद पहुँचेगी। इस तरह चेतना के उस स्तर पर कहा जा सकता है कि तुम भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को एक साथ देखते हो। भागवत कृपा से कुछ लोग उस स्तर तक पहुँच सकते हैं, परन्तु योग द्वारा तुम सचमुच सीखते हो कि इस आन्तरिक स्तर तक कैसे पहुँचा जाये। इसीलिए ये स्वप्न आया करते हैं और उन्हें तुम अपनी चेतना में स्पष्टतः देखते और जीते हो, क्योंकि स्वप्न में तुम उन स्तरों में प्रवेश करते हो।

(क्रमशः)

—नवजातजी

मैं तुम्हें द्वारिका तक गया देखने

मैं तुम्हें द्वारिका तक गया देखने।
तुम वहाँ पर भी मुझको नहीं मिल सके।।
खोजता ही रहा कुञ्ज गलियों में जा।
फूल आशा के फिर भी नहीं खिल सके।।
मैंने गोकुल में जा के भी देखा तुम्हें।
तुम चुराते यूँ मक्खन नहीं मिल सके।।
कुरुक्षेत्र तक भी गया देखने।
रथ का पहिया उठाये नहीं मिल सके।।
"शस्त्र को न उठाऊँगा" रणभूमि में।
तोड़ते इस वचन को नहीं मिल सके।।
मैंने मैदान सारा खँगाला वहाँ।
अर्जुन को गीता सुनाते नहीं मिल सके।।
राधिका के नयन झाँक, देखा तभी।
मुस्कुराते हुए तुम वहाँ मिल सके।।
तुम मिले भी तो हो मुझको किस मोड़ पर।
मेरी व्यथा को न तुम सुन सके।।
शान्त मन बैठ कर ध्यान में जब गया।
नाद को तुम सुनाते मुझे मिल सके।।

'स्पर्श' से साभार —उमेश कुलश्रेष्ठ 'दीप'

कृष्ण की लीला : रूप-रंगों के पीछे छिपी प्रगति की शक्ति।

*

जड़-भौतिक में कृष्ण की लीला : सुन्दरता, प्रेम और आनन्द साथी हैं, यह लीला तुम्हें विस्तृत करती और तुम्हारी प्रगति करवाती है।

*

भौतिक में कृष्ण की लीला : धरती पर अवतार का शासन, यानी नये दिव्य-जीवन की उपलब्धि। श्रीमाँ

प्रकृति-माँ का सान्निध्य

यह सुन्दर प्रकृति, यह स्वच्छ नीलाकाश, यह हमारे प्राणों में प्रतिक्षण अमृत भरने वाली मुक्त वायु, ये हँसते हुए फूल, अन्धकार को पार कर, प्रकाश की भाषा बोलने वाले चन्द्र और तारे, समस्त जीवन और प्रकाश का दाता सूर्य, ये कल-कल करती हुई नदियाँ, ये पहाड़ों के हृदय से झरने वाले झरने, सब स्वास्थ्य और आनन्द का सन्देश देते हैं। इस सन्देश को सुनने के लिए तुम्हें प्रकृति के निकट आना है। तुम प्रकृति को देखो, उससे खेलो, उसे अपने हृदय में प्रवेश करने दो। प्रातःकाल आलस्य और अँगड़ाइयों के ज्वार-भाटे से ऊपर उठो; एक झटके में बिस्तर छोड़ दो। मुँह धोओ; आँखों में छींटे दो और बाहर भागो। बाहर नगरों के अप्राकृतिक कृत्रिम वातावरण से दूर जाओ, जहाँ प्रकृति के दर्शन हो, जहाँ हवा की गति रोकने वाली हवेलियाँ न हों। दौड़ो, हँसो, उछलो, कूदो, जीवन को उमड़ने दो, शुद्ध वायु को अपने अन्दर जितना ग्रहण कर सको, करो। अमृत समझ कर पियो। शरीर के प्रत्येक घटक से इस प्राणवायु का स्पर्श होने दो। जब उषा हँसती हुई आवे उसे देखो। मिटता हुआ अन्धकार; अन्धकार पर प्रकाश-किरणों की उत्तरोत्तर विजय! सम्पूर्ण सुषुप्त जीवन जागता हुआ!

फूलों के पास जाओ। उनकी प्रसन्नता अपने प्राणों में भरो, उनके रंग और उनका सौन्दर्य अपने में आने दो; विषाद का वातावरण नष्ट हो जाने दो और अपने चतुर्दिक आशा का प्रकाश फैलने दो। इन फूलों से खेलो, हँसो, बातें करो। उनकी सुगन्ध अपने प्राणों में बसने दो, उनकी मुस्कुराहट अपने गालों पर फैलने दो। उनका प्रकाश अपनी आँखों में उतरने दो। सब कृत्रिम बन्धनों को तोड़ कर प्रकृति के साथ एक होने की, ऐक्य का अनुभव करने की चेष्टा करो।

'मधुसञ्चय' से साभार —रामनाथ 'सुमन'

प्रकृति सुन्दर होने में ख़ुश रहती है।
प्रकृति अपने सौन्दर्य में आनन्द लेती है।
सौन्दर्य प्रकृति का आनन्दपूर्ण निवेदन है।
प्रकृति की अन्तरात्मा सुन्दर रूप में खिलती है। श्रीमाँ

माँ को तुम पर गर्व है...

दिल्ली के सुलतान औरंगज़ेब ने न जाने हिन्दुस्तान के कितने देवालयों को नष्ट-भ्रष्ट किया। उसकी सेना मन्दिरों को ध्वस्त करने में ही व्यस्त रहती थी। विन्ध्यवासिनी देवी के विशाल मन्दिर की ख़बर उस तक पहुँचने में देर न लगी। और मुग़ल सैनिकों की टुकड़ी दिल्ली से रवाना हो गयी। इनकी टुकड़ी का नायक था असमलख़ाँ जो सचमुच मन-ही-मन यह सोच कर भयभीत हो रहा था कि इस मन्दिर के संरक्षक हैं बुन्देल केसरी महाराज चम्पतराय। देवी के उन अनन्य भक्त से लोहा लेना स्वयं मृत्यु को ललकारना है, लेकिन राजा की आज्ञा को भला कौन टाल सकता है...!

इधर विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में हर वर्ष की तरह वार्षिक पूजा-महोत्सव तथा मेला सजने की तैयारियाँ ज़ोर-शोर से हो रही थीं। दूर-दूर से न केवल भक्तगण उस विशेष उत्सव पर भगवान् के द्वारे आ रहे थे बल्कि बड़े-बड़े व्यापारी और किसान भी उस मेले में हिस्सा लेने आ पहुँचे थे। मन्दिर को वधू की तरह सजाया गया। अपार जनसमूह इकट्ठा हो रहा था वहाँ। यद्यपि कुछ लोगों के मन में कहीं सन्देह का अंकुर फूट निकला था कि कहीं औरंगज़ेब आक्रमण न कर बैठे, लेकिन वह केवल क्षणिक था, क्योंकि उन्हें अपने राजा पर पूरा भरोसा था और सभी यही कह रहे थे कि जब तक हमारे महाराज चम्पतरायजू हैं तब तक कोई हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। वे हैं देवी के अनन्य भक्त, धर्म के रक्षक, उनके ऊपर हमेशा देवी का वरद हस्त रहता है और हम पल रहे हैं उनकी छत्रच्छाया में, हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

युवराज छत्रसाल भी सवेरे पौ फटते ही देवी-दर्शन के लिए अपने कुछ साथियों के साथ मन्दिर की ओर निकल पड़े। रास्ते में पुष्पवाटिका से फूल चुनते-चुनते युवराज और उनके साथी जुझारसिंह मन्दिर से काफ़ी दूर निकल आये। अचानक जुझारसिंह ने कहा—"युवराज, हम तो मन्दिर को पीछे छोड़ आये। चलिये, जल्दी ही वापस लौट चलें, पूजन और देवी-दर्शन का समय हो रहा है।"

अभी जुझारसिंह ने अपना वाक्य पूरा भी न किया था कि घोड़ों की टापों से वे दोनों ठिठक गये।

जुझारसिंह को सन्देह ने घेर लिया, उनके हृदय की धड़कनें बढ़ गयीं। उन्हें अपनी नहीं युवराज के प्राणों की कहीं अधिक चिन्ता थी। जुझार के हृदय की बात पढ़ते हुए छत्रसाल ने हँसते हुए कहा—"अरे जुझार, डरते क्यों हो? क्या तुम्हें अपनी बाँहों पर भरोसा नहीं? तुम तो बुन्देला वीर हो और फिर हम दोनों के पास तो दुश्मन के छक्के छुड़ाने वाली तलवारें हैं।"

—युवराज, अपने लिए मुझे तनिक भी भय नहीं लेकिन...

—लेकिन असमलख़ाँ का भय तुम्हें ज़रूर होगा—जुझारसिंह की बात काटते हुए घोड़े से नीचे कूद पड़ा असमलख़ाँ और उसके साथ-साथ मुग़ल टुकड़ी के सैनिक भी अपने-अपने घोड़ों से उतर पड़े। युवराज छत्रसाल के रौबदार चेहरे, राजसी वेश-भूषा, सौन्दर्य की उस खान को वे ठगे-से खड़े देखते रह गये। फूलों की टोकरी की ओर इशारा करते हुए असमलख़ाँ ने रौबदार आवाज़ में पूछा—"पूजा करने चले हो, हमें भी बताओ कि विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर किधर है?"

"क्यों, तुम्हें मन्दिर से क्या लेना-देना, पूजा करनी है क्या?" छत्रसाल ने उसी तरह व्यंग्यभरे स्वर में पूछा।

अपनी टुकड़ी के सम्मुख केवल युवराज तथा उनके साथी को देख असमलख़ाँ मन-ही-मन निश्चिन्त हो अट्टहास्य का फ़व्वारा छोड़ते हुए बोला —"मूर्ख छोकरे, हम तुम जैसे काफ़िर नहीं हैं, हमारे बादशाह का हुक्म है कि मुल्क में बुतपरस्ती ख़त्म कर दी जाये, हम मन्दिर तोड़ने आये हैं, बता कहाँ है मन्दिर?"

युवराज को अनायास हँसी आ गयी। 'चल जुझार, हमें देर हो रही है,' कहते हुए सहज भाव से आगे बढ़ गये। असमलख़ाँ इस अपमान से तिलमिला उठा। तलवार खींच कर फिर गरजा—"तेरी यह हिम्मत। बता मन्दिर कहाँ है, नहीं तो तुम दोनों के सिर यहाँ लोटते नज़र आयेंगे।"

असलम की इस बात से उत्तेजित हो जुझार ने तलवार खींच ली, लेकिन युवराज का हाथ अभी अपनी तलवार की मूठ पर ही था। निर्भीक हँसी के साथ उनकी वाणी गूँज उठी—"अच्छा, मन्दिर तोड़ने आये हो मुग़ल सरदार या अपनी मौत को ललकारने? आ जाओ। विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर मेरे हृदय में बसा है, यदि साहस है तो लो तोड़ो इसे।" इतना कह कर छत्रसाल सीना तान कर सरदार के सामने खड़े हो गये, जुझार भी निर्भय हो, तलवार ताने खड़ा रहा।

उन बालकों के ऐसे अप्रतिम साहस को देख एक बार के लिए तो असमलख़ाँ अन्दर-ही-अन्दर काँप उठा, लेकिन उसे अपनी सेना की टुकड़ी का सहारा प्राप्त था, फिर से गरज कर बोला—"तुम लोग बताते हो या यहीं तुम्हारा काम तमाम कर दूँ।"

"और तुम्हें क्या कम सुनायी पड़ता है?" युवराज ने धरती को थर्राते हुए एक झटके में अपनी तलवार म्यान से खींच ली। और इसके साथ-साथ वह पुष्प-वाटिका रण-स्थल में बदल गयी। उन दोनों वीरों की फुर्ती, तेज और रण-कौशल मुग़ल टुकड़ी पर भारी पड़ने लगा। असमलख़ाँ जिधर दृष्टि घुमाता वहीं वे दोनों बिजली की तेज़ी से तलवार घुमाते नज़र आते। अपनी सेना का साहस छूटते देख वह भी रणक्षेत्र से भागने की सोचने लगा, लेकिन तभी युवराज के एक मारक वार ने उसे दुनिया से ही छुटकारा दिला दिया। अपने सरदार को गिरता देख सेना का रहा-सहा मनोबल भी चुक गया और वह मैदान छोड़ भाग खड़ी हुई।

तब तक आँधी की तरह ख़बर सारे नगर में फैल गयी। महाराज चम्पतराय सेना लेकर पुष्प-वाटिका की ओर निकल पड़े, सामने से युवराज तथा जुझारसिंह फूलों से भरी डलिया लिये मुस्कुराते हुए आते दिखायी दिये। महाराज ने लपक कर एक साथ दोनों को अपनी बाँहों में भर लिया। शत्रु के सम्मुख खड़ा वह वीर पिता की बाँहों में बच्चा बन गया—"बाबा, वे माँ का मन्दिर नष्ट करने की बात कर रहे थे, हम दोनों ने मिल कर उन्हें ठिकाने लगा दिया।"

दोनों का माथा चूम कर पिता बोल उठे—"मेरे बहादुर बच्चो! विन्ध्यवासिनी माँ को तुम पर गर्व है। मन्दिर की रक्षा के लिए अपने जीवन का प्रथम युद्ध लड़ कर देवी माँ ने तुम दोनों के भाल पर विजयश्री का तिलक लगा दिया।"

—वन्दना

साभार :
फूलश्री देवड़ा सेवा कोश
रजनीगन्धा १३ ई
२५, बालीगंज पार्क, कोलकाता- ७०००१९

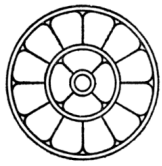

जब तुम लोगों को ख़ुश करना चाहते हो तो तुम चीज़ों को वैसे ही चलने देते हो जैसे वे चलती हैं। तुम प्रतीक्षा करते हो कि प्रकृति अपनी प्रगति को मनुष्य पर लादे। परन्तु यह सृष्टि का सत्य नहीं है। मनुष्य का सच्चा आदर्श यह है कि वह प्रकृति पर अपनी प्रगति को आरोपित करे।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,

जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)

www.aurosocietyrajasthan.org

Sri Aurobindo Society
INDORE BRANCH
Creating the Next Future

विज्ञप्ति अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुदुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द–विश्व– निलयम् के नव–निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य –निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ – श्री अरविन्द के दिव्य – ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि –कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य – देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान–राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान–राशि "श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर" के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा ।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP. ICICI Bank, Indore (M. P.) – 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sasindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry – 605 001, Website: www.aurosociety.org

आप QR कोड स्केन करके भी डोनेशन कर सकते हैं।

Bank Details –
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name – Canara Bank
Branch – M. G. Road Indore – 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

SRI AUROBINDO SOCIETY INDORE

Proposed View

Date of Publication: 1st February 2023
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70